प्रसाद के नाटकों में गीत-योजना

[एम० ए० उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध]

: प्रस्तुत-कर्त्री :

कोत्त० वसंत कुमारी

आंध्रविश्वविद्यालय,

वाल्तेर ।

१९७४

साहित्याचार्य

प्रो. जी० सुंदर रेड्डी,

अध्यक्ष, हिंदीविभाग ।

—: निर्देशक :—

साहित्य रत्न

डा० कर्ण० राजशेषगिरिराव,

एम० ए०, [हिंदी] एम० ए० [संस्कृत],

एम० ए० [तेलुगु] पी० एच० डी०,

रीडर, हिंदी विभाग ।

प्रसाद के नाटकों में गीत-योजना

[एम० ए० उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध]

: प्रस्तुत-कर्त्री :

कोत्त० वसंत कुमारी

आंध्रविश्वविद्यालय,

वाल्तेर ।

१९७४

साहित्याचार्य

प्रो. जी० सुंदर रेड्डी,

अध्यक्ष, हिंदीविभाग ।

—: निर्देशक :—

साहित्य-रत्न

डा० कर्ण० राजशेषगिरिराव,

एम० ए०, [हिंदी] एम० ए० [संस्कृत],

एम० ए० [तेलुगु] पी० एच० डी०,

रीडर, हिंदी विभाग ।

भूमिका

नाटक दृश्य काव्य है। उसे "रूपक" या "रूप" कहा जाता है। रूप का अर्थ है, जिसे दृश्यता के कारण रूपाकार मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि नाटक पूर्णतया बिंबात्मक कला है। भरत ने इसे "क्रीडनीयक"(क्रीडनीयक मिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्) कहा है। कालिदास ने इसे "चक्षुषक्रतु" माना है। "क्रीडनीयक" तथा "चाक्षुषयज्ञ" होने से इस साहित्य विधा का महत्वपूर्ण स्थान ही है। यह दृश्य एवं श्रव्य दोनों है। श्रव्य काव्य के बिंबों से दृश्य काव्य के बिंब भिन्न अतः पूर्ण होते हैं। वे अभिनेयता के वास्तविक अथवा काल्पनिक परिपार्श्व में निर्मित होते हैं। बिंब योजना में संगीत का महत्व कम नहीं आँका जा सकता। संगीत में गीत और नृत्य दोनों सम्मिलित रहते हैं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि नाटक का अवतरण नृत्य से ही हुआ है। संगीत एवं अभिनय का घनिष्ठ संबंध रहा है। संगीत का प्रयोग प्राचीन काल से दर्शकों की मनोरंजनी वृत्ति की तृप्ति के लिये होता आ रहा है। संस्कृत की परंपरा के अनुसार प्रसाद के नाटकों में नर्तकियाँ तो नृत्य करती हैं। गीत गाती हैं। किंतु पात्रों का बीच बीच में गीत गाना भारतीय नाट्य परंपरा के अनुकूल नहीं है। शायद यह पारसी रंगमंच का प्रभाव हो सकता है। प्रसाद ने अपने नाटकों में जो गीत दिये हैं, वे किसी विशेष उद्देश्य से नहीं। इनका प्रवेश एक तो काव्य प्रकृति वश है, दूसरे अनुकरण-मात्र और तीसरे निरुद्देश्य एवं जान-बूझकर ही हुआ है। इस प्रसंग में यह बात भी विचारणीय है कि नाटकीय प्रतिभा से उनकी प्रतिभा का विकास पहले ही हो चुका था। अतः कहीं कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसाद अपने सुंदर गीतों को स्थान देने के लिये ही कथा-वस्तु को भी उसके अनुकूल कर डालते हैं। गीत कथावस्तु के प्रवाह में सहायक होने के बदले कथावस्तु ही गीतों के प्रवाह की ओर अग्रसर होने लगती है। यह सच है

कि उनके नाटकों के गीत सरस, भावपूर्ण, हृदयाकर्षक एवं तन्मय बनानेवाले हैं। पर यहाँ स्मरण करने लायक विषय यह है कि नाटक की मूल कथा से उनका कुछ भी संबंध नहीं है। हाँ। स्कंदगुप्त एवं चंद्रगुप्त नाटकों के गीत उनके उपयुक्त हैं। गीत की दृष्टि से स्कंदगुप्त एवं ध्रुवस्वामिनी विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनके गीत स्वर, ताल, लय आदि के अनुसार गाये जाते हैं। और परिस्थिति सापेक्ष है। गीत आधुनिक नाटकों में परिस्थितियों के कारण उपेक्षा की दृष्टि से देखे जा रहे हैं। पर नाटकीयता के लिये ये गीत अत्यंत आवश्यक तथा उपयोगी सिद्ध हुये हैं। इस तथ्य के लिये प्रसाद के नाटक ही प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इस लघु-शोधप्रबंध में "प्रसाद के नाटकों में गीत योजना" पर विवेचन करने का विनम्र प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिये प्रबंध आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में जयशंकर प्रसाद के जीवन, साहित्य, एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में काव्य प्रकारों का उल्लेख किया गया है। तृतीय अध्याय में रूपक के तत्वों एवं प्रकारों का विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ अध्याय में गीतिकाव्य परंपरा का विवेचन किया गया है। पंचम अध्याय में प्रसाद के नाटकों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। षष्ठ अध्याय में नाटकों में गीत योजना का ऐतिहासिक क्रम दिया गया है। सप्तम अध्याय में गीतों का विश्लेषण किया गया है। अष्ठम अध्याय में निष्कर्ष के रूप में अध्ययन का सारांश प्रस्तुत किया गया है।

इस विषय पर शोधकार्य करने की स्वीकृति देकर हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० रेड्डीजी ने विशेष कृपा की है। उनके प्रति मैं हार्दिक धन्यवाद समर्पित

करती हूं।

श्री वर्य राजशेखरगिरिराजजी इस लघु-शोध ग्रंथ में मुझे पग-पग पर अपनी सलाह देते हुये एवं प्रोत्साहित करते हुये मेरे मार्गदर्शक बने हैं। उनके प्रति सिर्फ कृतज्ञता प्रकट करना धृष्टता ही होगी। फिर भी मन की पुष्पांजलि समर्पित किये बिना और आभार व्यक्त किये बिना न रह सकूँगी।

आशा है कि सुधीगण मेरे इस विनम्र प्रयास का स्वागत करेंगे और मुझे प्रोत्साहन देकर आशीर्वाद प्रदान करेंगे।

आपकी विनीता,

(कौस्ता वसंत कुमारी)

प्रसाद के नाटकों में गीत - योजना

विषय - सूची

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

-: प्रथम अध्याय :-

विषय - प्रवेश

प्रसाद का जीवन :- जयशंकर प्रसाद का जन्म:-

धर्म, ज्ञान और संस्कृति की प्राचीन नगरी काशी; तुलसी, कबीर और भारतेंदु की साधना भूमि काशी; प्रसाद और प्रेमचंद की कर्मभूमि काशी; किसी ने ठीक ही कहा है -

"खाक भी जिस जमीं की पारस है,
शहर मशहूर यह बनारस है।"

उसी मशहूर शहर बनारस के सराय गोवर्धन मोहल्ले में "सुंघनी साहु" का वह पुश्तैनी मकान है, जहाँ प्रतिष्ठित कन्याकुब्ज वैश्य परिवार में विक्रमी संवत् १८८९ की माघ शुक्ला दशमी को जयशंकर प्रसाद का जन्म हुआ था। पिता का नाम था देवी प्रसाद और पितामह का नाम शिवरत्न साहु। उनके पिता एक, प्रसिद्ध व्यापारी होते हुये भी काव्य प्रेमी थे। पितामह भी उदार होने के साथ ही साथ विद्यानुरागी भी थे। वे धार्मिक संस्कारवाले लोग थे। और शैव मत को मानते थे। उनके घर पर कवियों का समाज सदैव जमा रहता था। प्रसाद कभी शिवालय में नित्य पूजन और उपासना करते थे। प्रसाद के अन्तस में उसी वातावरण ने कवि बनने के संस्कार जमा दिये।

बनारस के क्वींस कॉलेज में सातवीं कक्षा तक शिक्षा पाने के बाद, बालक जयशंकर प्रसाद को स्कूल की पढ़ाई छोड़नी पड़ी। किंतु घर पर ही उन्हें

हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी की शिक्षा दी जाने लगी। उन्हें अंग्रेजी में कुछ शिक्षा मिली। बाद में उन्होंने स्वतंत्र रूप से ही संस्कृत, हिन्दी और उर्दू साहित्य का गहन अध्ययन किया। दर्शन का भी गंभीर अध्ययन उन्होंने किया । किंतु जिस शिक्षा ने उन्हें इतना महान बनाया, वह किताबी शिक्षा मात्र ही न थी, अपितु इस दुनिया से मिलनेवाली शिक्षा का भी बडा हाथ था। प्रसाद जी को जीवन में निरंतर संघर्ष का सामना करना पडा। और उन्हीं संघर्षों के बीच में उनका व्यक्तित्व निखर कर महान बन सका था। जैसा कि पाश्चात्य विद्वान श्री निकल्सन ने एक स्थान पर लिखा है

"पर्सनालिटी ईज ए स्टेट आफ टेन्शन एन्ड कैन कन्टिन्यू
ओन्ली इफ दट स्टेट ईज मैनटैन्ड।"

अर्थात् संघर्षोंके बीच में रहने से ही व्यक्तित्व निखरता है। प्रसाद जी का कवि-व्यक्तित्व भी निरंतर संघर्ष के जूझने से निखर पाया है। अपनी बाल्यावस्था से ही उन्हें बडे बडे संघर्षों का सामना करना पडा। बारह वर्ष की उम्र में ही उनके पिताजी का देहांत हो गया था। और इसके तीन वर्ष पश्चात् ही उनकी माताजी चल बसीं। पिताजी अपने मरने के बाद बहुत बडा कर्ज छोड गये थे। व्यापार भी शिथिल हो गया था। घर की बागडोर प्रसादजी के बडे भाई ने अपने हाथ में ली किंतु दो वर्ष बाद उनका भी देहांत हो गया। साथ ही पारिवारिक कलह, और मुकदमेबाजी, शुरु हो गयीं। जिसने उन्हें कर्जदार बना दिया। इन सभी विपत्तियों के कारण उन्हें किशोरावस्था में ही दूकान और गृहस्थी दोनों संभालनी पडी। वास्तव में वे ऐसे धक्के थे जिन्हें एक के बाद एक सहना किसी धैर्यवान व्यक्ति का

ही कार्य था। इस तरह प्रसाद जी के ऊपर सारे घर का बोझ पड गया। इसी ब्र बीच में प्रसाद जी की दो पत्नियाँ थीं, एक के बाद एक चल बसीं। इस प्रकार प्रसादजी का जीवन निरंतर संघर्षमय रहा है।

प्रसादजी पंद्रह वर्ष की अवस्था से ही लिखने लगे थे। १८९३ से ही उनकी सबसे पहली रचना बनारसके पत्र "भारतेंदु" में प्रकाशित हुई थी। घर के काम-काज और दूकान से ही उन्हें कम अवकाश मिलता था। इतने व्यस्त होने पर भी वे साहित्य सृजन में निरंतर दत्तचित्त रहते थे। अपने जीवन के अंतिम काल में उन्हें कुछ अवकाश मिला था और इसलिये वे निश्चित योजना के अनुसार साहित्य का सृजन करना चाहते थे। किंतु जैसा कि "मेनान्डेर" ने लिखा है :-

अर्थात् " जिसे भगवान प्यार करते हैं, वह जल्दी मर जाता है"। यही प्रसाद जी के बारे में घटित हुआ। ४६-४७ वर्ष की अल्प-आयु में ही उनका स्वर्गवास हो गया। हिन्दी का कवींद्र, रवींद्र की आयु न पा सका और हिन्दी प्रेमियों को बिलखाता हुआ छोड गया।

<u>प्रसाद का व्यक्तित्वः-</u>

<u>कविः</u>- कवि भावनाओं का गायक है। वह प्रत्येक निर्माण स्वयं करता है। और उस दृष्टि से एक महान कृतिकार है। रचना में अल्पतम अवयवों का प्रयोग करने के कारण भी उसे महत्वपूर्ण पद प्राप्त है। भावना-क्षेत्र में प्राचीन भारतीय दर्शन कवि और ऋषि में निकट साम्य स्थापित करता है। ऋग्वेद के

के अनुसार:-

"कविः कविक्त्वा दिवि रूपम् आसजत्"

अर्थात् कवि दिव्य रूपों का निर्माता है। भारतीय कवियों की परंपरा भी महर्षि वाल्मीकि से प्रारंभ होती है। ग्रीक शब्द "पोयइटस" से उत्पन्न "पोयट" शब्द का अर्थ है "शिल्पि, संगीतमय विचारों का निर्माता। कवि कर्म जीवन की एक महान साधना है। "कारलायल" का कथन है देवदूत इस रहस्य का उद्घाटन कर्ता होता है कि हम क्या करें। कवि कृतियों से आदर्श प्रस्तुत करता है। वह संसार में जो कुछ भी अनुभव करता और देखता है, उसकी उस पर एक प्रतिक्रिया होती है, और उसे वह भाषा के माध्यम से व्यक्त कर देता है। इस प्रकार कवि विशिष्टप्रतिभासंपन्न व्यक्ति है।

"आबेहयात" के अनुसार शायर वही है जिसमें असर पैदा करनेवाली सिफत खुदादाद हो .. जिससे जो कैफियत वह आप उठाता है, वही कैफियत वाले के दिल पर छा जाय और असर कर जाय।

यहाँ से लेकर आधुनिक युग की परिभाषा तक में कवि को असाधारण कृतिकार के रूप में स्वीकार किया जाता है। भावना, अनुभूति ही उसकी शक्ति है, जिसके अभाव में वह एक चरण भी नहीं चल सकता। इसी कारण "वर्ड्स वर्थ" तो काव्य को भावना रूप में ही स्वीकार करता है। कवि की विचार-धारा उसकी कृतियों में ही निहित होती है।

कवि जीवन का व्याख्याकार है। वह संसार से प्रेरणा ग्रहण करता है। आंतरिक और बाह्य दोनों ही पक्षों पर उसका ध्यान रहता है और वह उन्हें साथ लेकर चलता है। आंतरिक अनुभूति से कवि की व्यक्तिगत भावना का अधिक संबंध होता है। दूसरों की भावनाओं को वह अपने निकट ले आता है। प्रकृति के अंतस्थल में जाकर उसके मौन स्वरूप से चेतना ग्रहण करने की शक्ति कवि को सहज सुलभ होती है। उसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है। और वह असूर्य पश्य तक पहुँच जाता है। उसकी कल्पना अत्यंत तीव्र होती है। बाह्य पक्ष से समाज तथा काल का अधिक संबंध रहता है; किंतु अंतर्मुखी होते हुये भी कवि समाज की अवहेलना नहीं कर पाता। देश-काल का स्वर उसके स्वाभाविक संगीत में स्थान पाता है। वह अपने युग का प्रतिबिंब होता है। वास्तव में अंतर और बाह्य पक्ष का सर्वांग संपूर्ण भावात्मक प्रकाशन ही सुंदर काव्य की परिभाषा कही जा सकती है।

कवि का जीवन उसकी कृतियों में परोक्ष रूप से आंका करता है। जो कार्य साधारण व्यक्ति व्याख्या से करता है, उसे वह संकेत मात्र से कर लेता है। वह जिस संसार से अनुप्राणित होता है, उसकी व्याख्या भी अपने आदर्शों के अनुसार करता है। विश्व के सभी महान कवियों के काव्य में उनके जीवन की छाया परोक्ष रूप से प्राप्त होती है।

कवि का पूर्णतया रसास्वादन करने के लिये कवि की सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्थिति से परिचित होना है। किस परिस्थिति में, किन मनोदशाओं

से विवश होकर कवि का प्रभुत संगीत प्रवाहित हुआ होगा, यह ज्ञात हो जाने पर कक काव्य की आत्मा तक पहुँच जा सकता है। करुणा से द्रवित वाल्मीकि -

" मा निषाद प्रतिष्ठा त्व मगमः शाश्वतीः समाः"

की अंतरात्मा तक जाने के लिये क्रौंच, क्रौंच वध की कथा जाननी है। संसार के विशिष्ट लोगों की जीवनानुभूति उनके काव्य में मुखरित होती है।

शैशवः- कवि प्रसाद के पितामह बाबू शिवरतन साहु काशी के अत्यंत प्रतिष्ठित नागरिक थे। वे "सुंघनीसाहु" के नाम से विख्यात थे। धन-धान्य से परिवार भरा-पूरा रहता था। लोग उनकी उदारता देखकर उन्हें "महादेव" कहकर प्रणाम करते थे। ऐसे वैभवपूर्ण वातावरण में प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी १८४६ वि. को हुआ। उनके तीसरे वर्ष में केदारेश्वर के मंदिर में प्रसाद का सर्वप्रथम क्षौर संस्कार हुआ। उनके परिवार का इष्टदेव "शंकर" थे। वैद्यनाथधाम के झारखण्ड से लेकर उज्जयनी के महाकाल तक के ज्योतिर्लिंग की आराधना के फलस्वरूप पुत्र-रत्न का जन्म हुआ था। इसलिये उन्हें शैशव में "झारखण्डी" कहकर पुकारा जाता था। शिव के प्रसाद स्वरूप उस महान कवि का जन्म हुआ था। जीवन के प्रथम चरण में ही अपने पाणि-पल्लवों में लेखनी उठा लेना उसके आगामी विकास का परिचायक है। पाँच वर्ष की अवस्था में संस्कार संपन्न कराने केलिये जब विन्ध्याचल ले जाया गया , वहाँ की प्रकृति के उन्मुक्त सौंदर्य ने कवि की शैशवकालीन स्मृतियों पर अपनी छाया डाल दी। सुंदर पर्वत श्रेणियाँ, बहते हुये निर्झर, प्रकृति का नव नव रूपों ने उनके नादान हृदय में कुतूहल और जिज्ञासा भर दी। "अहरौरा" के जल-

पास की पहाड़ियों में उनकी संधि से सवेग भागती हुई जल की छोटी छोटी धाराओं ने अपने कलकल , छल छल संगीत से उनके हृदय में शीतल अनुभूति की उन्मेष-क्रीडा को जन्म दिया। "चित्राधार" की रचनाओं में प्रकृति का ही स्वरूप अंकित है। झरने के सजीव चित्र की प्रेरणा कवि को शैशव काल में ही प्राप्त हुई। प्रकृति का प्रथम दर्शन आगे चलकर मानवीय भावनाओं के तादात्म्य से एक स्वस्थ जीवन दर्शन में परिवर्तित हो गया, जहाँ प्रकृति और मानव मेंकोई अंतर रह नहीं जाता। प्रकृति का यह प्रथम दर्शन कवि के समस्त साहित्य में क्षीण रेखा की भाँति दिखाई देता है।

चित्रकूट की पर्वतीय शोभा , नैमिषारण्य का निर्जन वन, मथुरा की वनस्थली तथा अन्य क्षेत्रों के मनोरम दृश्यों पर वे रीझ उठे। इस समय कलाधर उपनाम से सर्वप्रथम एक कविता की रचना की।

प्रसाद जी का परिवार शैव था। बालक प्रसाद भी भगवद् भक्ति में तन्मय होकर भक्तों का स्तुतिपाठ करना देखते थे। प्रातःकाल वातावरण को मुखरित कर देनेवाली घंटों की ध्वनि उनके लिये उस समय केवल एक जिज्ञासा, कुतूहल का विषय थी। जीवन के आरंभ में शिव की भक्ति करनेवाला कवि अंत में शैव-दर्शन से प्रभावित हुआ।

आरंभ से ही प्रसाद की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है। कवि की प्रारंभिक शिक्षा प्राचीन परिपाटी के अनुसार हुई। प्रसाद जी के मित्र श्री

विश्वंभरनाथ जिज्जा का कथन है आठ–नौ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने अमर कोश तथा लघु कौमुदी कंठस्थ कर ली थी। यह कवि की असाधारण बुद्धि और प्रतिभा का परिचायक है। इस प्रकार प्रसाद का अध्ययन महाकवियों की भाँति सुंदर रीति से आरंभ हुआ।

परिवर्तनः– प्रसाद जी के पिता देवी प्रसाद की मृत्यु के पश्चात् ही गृह कलह आरंभ हो गया। दुकान के साथ ही लाखों के ऋण का भार पडा। बनारस में चौक पर खडी हुई भारी इमारत भी बेच देनी पडी। प्रसाद इस पतन को देख रहे थे। मन मानो मनु स्वयं इस आकस्मिक परिवर्तन से डोल उठा हो। इन्हीं झंझावातों के बीच प्रसाद की कालेज शिक्षा भी छूट गयी। रवींद्र, कालिदास होमर, शेक्सपीयर की तरह जीवन की पाठशाला में पढते थे। उन्होंने संसार की महान पुस्तक का अध्ययन किया। प्रसाद का समस्त साहित्य उपनिषद्, पुराण , वेद, भारतीय दर्शनादि का विस्तृत अध्ययन और चिंतन से अनुप्राणित है।

स्वयं प्रसादजी भी खूब कसरत करते थे। प्रसाद जी के पास सौंदर्य, धन और यश तीनों ही थे। प्रसाद जी का उद्देश्य था"भाग्य के अनुकूल सभी कुछ होता है। इसी समय में माता का देहांत होने से कवि प्रसादजी माता के पुनीत दुलार और स्नेह से वंचित हो गया। प्रसाद ने जीवन–पर्यंत माता का स्नेह भाभी को दिया। जब कोई इस महान कलाकार के जीवन में जानने का प्रयत्न करे तब प्रसाद की आँखों में आँसू छलक आते हैं। और वे कहते हैं " मेरे लिये तो वह केवल शंकर था"। कितने कष्ट सहे – वह एक ऐसी निर्मल स्रोतस्विनी है जो जीवन पर्यंत झर झर बहती रहती है। उनके बडे भाई एक अनुभवी व्यक्ति थे। उनकी धारणा थी भावुकता एक महान अभिशाप है। प्रसाद की कविता को सदा अपनी

भाभी रक्षा करती। इस प्रकार आरंभ से ही प्रसाद ने नारी को मा.T के रुप में देखा था। सदा उसे एक चेतना का वरदान मानते थे।

उत्तरदायित्व के दिनः— इस समय प्रसाद की अवस्था केवल १७ वर्ष थी। उन्हें जीवन का अधिक अनुभव न था। वे अपनी भावुकता का ~~कनर्म~~ आनंदही ले रहे थे। कि उन पर यह वज्रपात हुआ। पाँच—छः वर्ष के भीतर ही प्रसाद ने तीन अवसान देखे – पिता, माता और भाई। स्नेह—देवालय के महान शृंग गिर गये। वे अकेले ही रह गये। ऐसे समय में भारतीय दर्शन ने प्रसाद जी को नवीन प्रेरणा दी। फलतः "कामायनी" उनके मस्तिष्क में गूँज उठा। उनके हाथों में पत्र था। उन्हें स्वयं अपना विवाह भी करना पड़ा। जीवन की कठोरतायें उन्हें निति में विश्वास करने के लिये विवश कर दिया करती थीं। वे घंटों शिवालय में पूजन करते। इस ~~कुल के~~ पूजन के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा था – "निराशा, में, अशांति में, दुख मेंउस अपूर्ण सुंदर चंद्र रुपी भक्ति—रुपी किरणें तम्हें शान्ति प्रदान करेंगी। और यदि तुम्हें कोई कष्ट हो , तो उस अशरण—शरण—चरण में लोटकर रोओ। वे अश्रु तुम्हें सुधा के समान सुखद होंगे और तुम्हारे सब सन्तोष को हर लेंगे।

बचपन में ही एक भारी और व्यवसाय और परिवार का उत्तरदायित्व भावुक प्रसाद पर आ पड़ा। प्रसाद जी ने आजीवन अपने विगत वैभव को पाने कक का प्रयास किया। और अंत में सभी कुछ नियति के भार पर छोड़ दिया।

बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात् ही उन्होंने अपने जीवन में अनेक परिवर्तन

कर दिये थे। किसी प्रकार का व्यसन नहीं था। प्रातःकाल उठकर भ्रमण के लिये निकल जाते थे। वहाँ से लौटकर कसरत करने के पश्चात् नियमित रूप से लिखने बैठ जाते। स्नान-पूजन के पश्चात् दूकान चले जाते थे। रात को देर तक लिखा करते थे। ~~क्कि~~ उनकी अधिकांश साहित्य-साधना संसार के प्रमुख कलाकारों की भाँति ~~कर~~ रजनी के प्रहरों में निर्मित हुई।

उनकी रचनाओं के द्वारा स्पष्ट है कि आरंभ में उनका उपनाम "कलाधर" था। उनकी कविता प्रारंभ में रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार समाप्त हो गया। आपने बीस वर्ष तक गद्य-पद्य रचनायें की हैं।

<u>आरंभिक प्रेरणाः-</u> मुंशी कालिंदी प्रसाद उर्दू-फारसी के अच्छे विद्वान थे। प्रसाद ने जीवन के आरंभ में इस विद्वान से ही विशेष प्रेरणा ली। और उन्हें श्री रामानंद से भी प्रेरणा मिली। इस प्रकार सूफी कवि उमर खय्याम, रूमी, हाफिज, उर्दू के जौक गालिब, आदि के अनेक सुंदर अशआर मुंशी जी से प्रसाद को सुनने को मिलते थे। सूफी दर्शन की ओर अभिरुचि उत्पन्न कराने का श्रेय भी उन्हीं को मिला।

रामानंद जी ने अपनी कविता के द्वारा प्रसाद जी को भावों की तन्मयता और अनुभूति की सत्यता को बताया। उर्दू शैली में सुंदर व्यंजना होती है; जो ~~जो~~ प्रसाद के काव्य में छाया प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार रामानंद के जीवन और कविता दोनों से ही प्रसाद ने अपने यौवन के प्रथम प्रहर में प्रेरणा ग्रहण की थी।

प्रसाद जी की कविता का आरंभ ब्रजभाषा से ही हुआ। साथ ही खड़ी

बोली भी धीरे धीरे आ रही थी। ब्रजभाषा की रीतिकालीन शैली का स्पष्ट प्रभाव इनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है।

आरंभिक काव्य:- हिन्दी में प्रसाद का आगमन एक सर्वथा नवीन दिशा का सूचक था। इंदुकला, किरण, उनके आदि लेख हैं। कवि और कविता के अंत में लिखा - "श्रृंगार रस की मधुरता का पान करते करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल तथा आकुल हो गयीं हैं। इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने-वालीकविताओं की आवश्यकता है। इसलिये धीरे धीरे जातीय संगीतमयी, वृत्ति विस्फुरणकारिणी, आलस्य को भंग करनेवाली, आनंदबरसानेवाली, धीर, गंभीर, शांतिमयी कविता की ओर अग्रसर हो गया।

एक महाशय "रहस्यवाद" के नाम से ही इतना घबरा उठे कि प्रसाद जी का सारा रहस्यवाद उन्हें रूढिवाद जँचने लगा।

गतिशील चरण:- प्रसादजी ने सभी आरोपों का उत्तर सदा अपने क्रियाशील और गतिमान साहित्य से दिया। अनेक प्रकार की ~~अन्य~~ आवाजें उनसे टकराकर लौट गयीं। वे निरंतर काम करते गये। इस प्रकार स्वयं अपने साहित्य की मान्यतायें आलोचकों के सम्मुख रखीं। प्रसाद जी ने साहित्य के विषय में अनेक लेख लिखकर अपने विचारों का प्रतिपादन किया। वे साहित्य-साधक थे। नियमित रुप से लिखते थे। और यही उनका काम था।

प्रसाद को स्वयं अपने काव्य की व्याख्या करनी पड़ी। उन्होंने अपने

तथ्य, नीति और प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। छाया-वाद की व्याख्या करते हुये प्रसाद ने कुछ निबन्ध भी लिखे।

काव्य को "आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति" बताया। रहस्यवाद को उन्होंने पूर्णतया भारतीय सि[illegible] किया। छायावाद के विषय में ध्वन्यात्मकता, लाक्ष-णिकता, सौंदर्यमय प्रतीकविधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति उनकी विशेषतायें हैं। और कहा – "आधुनिक छायावाद केवल पाश्चात्यों का अनु-करण ही है।" इस प्रकार एक महान कलाकार की भाँति प्रसाद ने परिस्थिति से यु[illegible] किया।

<u>इंदु:-</u> प्रसाद का साहित्यिक जीवन "इंदु" पत्रिका से प्रकाश में आ गया। प्रसाद की योजना के अनुसार उसका समस्त कार्य होता था। उसके लिये कोई विधि का निबंधन नहीं है, क्योंकि साहित्य स्वतंत्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता। संसार में जो कुछ सत्य और सुंदर है, वही साहित्य का विषय है। सत्य और सौंदर्य को पूर्ण रूप से ~~विकसित करता~~ है। चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौंदर्य को पूर्ण रूप से विकसित ~~करता~~ करता है। इस प्रकार इंदु के विकास के ही साथ कवि पथ पर अग्रसर होता चला।

<u>सामाजिक जीवन</u>:- प्रसाद जी का जीवन एक साधक का-सा था। सभा आदि में जाना, उन्हें प्रिय न था। वास्तव में वे संकोचशील व्यक्ति थे। वे प्रायः दूसरों

को उत्साहित करते रहते । वे संयत स्वभाव के व्यक्ति थे। "लहर" की पंक्तियों में उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है। वे एक ऐसे वीतरागी की भाँति थे, जो जीवन में रहकर भी उससे दूर रहता है। समृद्धिशाली वातावरण में रहते हुये भी उन्होंने जीवन को खुली आँखों से देखने और पढने का प्रयास किया। जीवन और उनके साहित्य में इतनी अधिक एकाकारता है कि - उन्हें एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। एक महान कलाकार के साहित्य में उसका जीवन पग पग पर बोलता है। प्रसाद प्रत्येक वस्तु को बड़े ध्यान से देखते और सुनते थे।

काव्य की प्रेरणा उनके आंतरिक जीवन से अधिक संबंध रखती है। अंतर्मुखी होने के कारण वह उनकी जीवनानुभूति पर अधिक अवलंबित है। इस तरह उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी केवल अध्ययनशील न होकर जीवन के अधिक निकट है।

राजनीतिक जीवन में प्रसाद पूर्ण देशभक्त थे। अपने विचारों में पूर्णतया देश प्रेमी थे। कांग्रेस की अपेक्षा गाँधीजी के व्यक्तित्व ने उन्हें अधिक प्रभावित किया। ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पुनरुत्थान का प्रयास किया। वे शक्ति के उपासक होते हुये भी अहिंसा के पुजारी थे और बौद्ध दर्शन की ओर अधिक झुके थे। उनकी धारणा थी कि करुणा ही मानव का कल्याण कर सकती है। वे समाज का पुनरुत्थान चाहते थे।

<u>व्यक्तिगत जीवनः</u>- सौंदर्य को उज्ज्वलता, वरदान और चेतना से विभूषित करके उसे असाधारण महत्व दिया। प्रेम को मनुष्य की शक्ति मानते हैं। प्रसाद की भावना

बिना प्रेम और करुणा के एक चरण भी आगे नहीं बढती। अपनी कल्पना के द्वारा सभी में एक हृदय रखने का प्रयास किया। सबसे महत्वपूर्ण देन नारी-भावना है। नारी को श्रचित रुपा माना है। प्रेम के बिना नीरव प्रेम पीडा भी कवि के साहित्य में दिखाई देती है। जैसे -

" कमल कोश भरे मकरंद सों
जिमि विराजत चारु अमंद सों
निज सुगंध लिये वह आप ही
रहत मोद भरे चुपचाप ही " (चित्राधार)

प्रसाद जी ने नारी को आदर और सम्मान की दृष्टि सेदेखा। प्रसाद जी ने जीवन भर जिस स्मृति को सँजोने का प्रयास किया उसे कोई नहीं जान सका। यही उनके चरित्र की सबसे भारी विशेषता थी। अपने जीवन में अनेक उत्थान-पतन देखे थे। उसे जीवन में अत्यधिक प्रेम और स्नेह मिला था। किंतु उसका आकस्मिक परिवर्तन कवि के जीवन की एक टीस और वेदना बनकर रह गया। प्रसाद जी ने कहा कि मिलन एक स्वप्न मात्र था। जो अनजान में आकर अनायास ही चला गया प्रिय का परिचय "आँसू" में दिया। बौद्धिकता के विकास के साथ ही यह वेदना-अनुभूति एक स्वस्थ जीवन दर्शन में विकसित है। उनका संपूर्ण साहित्य प्रेम, करुणा से ओतप्रोत है।

काशी का जीवन :- प्रसाद जी को काशी से विशेष प्रेम था। वहाँ के सांस्कृतिक वातावरण में पले थे। काशी का और उनका प्रेम इसीसे स्पष्ट हो गया कि -

अंतिम समय में जब जलवायु परिवर्तन के लिये उपचारकों ने बाहर जाने को कहा तो प्रसादजी बोले - जीवन भर बाबा विश्वनाथ की छाया में रहा। अब कहाँ जाऊँ।"

आंतरिक जीवन में प्रसाद एक अध्ययनशील, चिन्तनशील और गंभीर व्यक्ति थे। सामाजिक जीवन में त्यागी, सदय, और सरल थे। वे केवल परिवारप्रेम एवं मित्र-प्रेम दिखानेवाले ही नहीं थे, देश, समाज, साहित्य, संस्कृति और धर्म के प्रति भी अगाध अनुराग रखनेवाले थे।

<u>उपसंहार:-</u> प्रसादजी ने साहित्य के अक्षय भण्डार को भरा दिया। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास विविध अंगों में उन्होंने कार्य किया। प्रसादजी राष्ट्रीय होते हुये भी अपनी सांस्कृतिक धारणाओं में अंतर्राष्ट्रीय है। कवि "हीगल" के अनुसारप्रसाद जी ने अपने जीवन को ही काव्य बना दिया। जीवन के अंतिम समय में उन्हें पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। वे घोर नियतिवादी थे।

उन्हें यक्ष्मा हो गया था। ऐसी ही स्थिति में हिन्दी का यह यशस्वी कलाकार २५ नवंबर १९३७ को प्रातःकाल इस संसार से उठ गया। पर अपने व्यक्तित्व और कृतित्व का सौरभ जो युगों तक आनेवाली मानवता का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा , उन्होंने छोड दिया।

- - - - - - - - -

प्रसाद जी की कृतियाँ

प्रसादजी की देन कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि सभी क्षेत्रों में ~~अपनी~~ अद्वितीय है। कवि की दृष्टि से आधुनिक युग के कवियों में से सबसे आगे दिखाई पड़ते हैं। नाटककार की दृष्टि से हिन्दी ~~के~~ नाटककारों में उनका स्थान सर्वोच्च है। कहानीकार की हैसियत से उनकी कहानियाँ हिन्दी में अपना विशेष महत्व रखती हैं। उपन्यास के क्षेत्र में यथार्थवादी धारा के प्रवर्तक हैं और निबन्धकार की दृष्टि से उनके छायावाद, रहस्यवाद, काव्यकला आदि पर लिखे निबन्ध उनके गंभीर अध्ययन के परिचायक हैं। इनके अतिरिक्त चम्पू, गीतिनाट्य, भी लिखे हैं। इस तरह देखने पर यह दृष्टि गोचर होती है कि उनकी कृतियों का विवरण मुख्यतः इस प्रकार है -

कविता:-१) चित्राधार, २)करुणालय, ३) प्रेम-पथिक,१९०९(ब्रजभाषा में) ४)प्रेम-पथिक (खड़ीबोली) में ५) महाराणा का महत्व, ६) काननकुसुम ७) झरना, ८)आँसू, ९)लहर, १०)कामायनी।

नाटक:- १) सज्जन, २)कल्याणी परिणय, ३) प्रायश्चित्त, ४)राज्यश्री, ५)विशाखा ६) अजातशत्रु ७) जनमेजय का नागयज्ञ, ८) कामना, ९) स्कन्दगुप्त, १०)एक घूँट, ११) चंद्रगुप्त, १२)ध्रुवस्वामिनी।

कहानी:- १) छाया, २)प्रतिध्वनि, ३)आँधी, ४)आकाशदीप, ५)इंद्रजाल (कहानीसंग्रह)

उपन्यास:- १) कंकाल, २) तितली, ३) इरावती(असंपूर्ण)

निबंध:- "काव्य कला तथा अन्य निबंध"।

चम्पू:- उर्वशी, प्रेमराज्य।

कथावस्तु के आधार पर प्रसादजी के नाटक चार वर्गों में बाँटे गये हैं।

१. वैदिक कथानक:- करुणालय

२. पौराणिक :- सज्जन एवं जनमेजय का नागयज्ञ।

३. ऐतिहासिक :- कल्याणी-परिणय, प्रायश्चित्त, राज्यश्री, विशाखा,
अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी।

४. प्रतीकात्मक समस्यामूलक:- कामना और एक घूँट।

इस प्रकार प्रसाद की कृतियों का एक प्रकार से साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

: : : : : : : : : : : :

द्वितीय अध्याय

काव्य प्रकार

-: द्वितीय अध्याय :-

काव्य - प्रकार

कविता मानव अनुभूतियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने का उत्तम साधन है।

काव्य का परिभाषा:- भारतीय आचार्यों ने काव्य की अनेक परिभाषायें दी हैं-

१. दण्डी ने "काव्यादर्श" में और कांतिचंद्र ने अपनी "काव्यदीपिका" में कहा कि

"इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावलि: काव्यम्"

अर्थात् इच्छित अर्थ को व्यक्त कर देनेवाली पदावली ही काव्य है।

२. शुद्धोधन ने "अलंकार शेखर" में कहा -

"काव्यं रसादि मद वाक्यं-श्रुतं सुखविशेषकृत्"

अर्थात् रस आदि गुणों से युक्त, और सुनने में सुखद वाक्य को ही काव्य बताया है।

३. भोज ने "सरस्वती कंठाभरण" में बताया -

"निर्दोषं गुणवत्काव्यं मलंकारै रलंकृतम्।
रसात्मकं कवि: कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिंच विन्दति।।"

अर्थात् जो कवि दोषरहित, गुणसहित और अलंकारों से सजा हुआ रसात्मक वाक्य x रचता है उसे कीर्ति और प्रीति मिलती है।

४. जयदेव ने चन्द्रालोक में कहा है -

"निर्दोषा लक्षणवती सुरीतिर्गुण भूषिता,

सालंकार रसानेक वृत्तिवाक् काव्यनामभाक्।""

अर्थात् दोष रहित, लक्षणोंवाली, रीति तथा गुणों से गुंथी हुई अलंकार और रसों वाली अनेक छंदों में सजी हुई वाणी ही काव्य है।

५. पण्डितराज जगन्नाथ ने माना है -

"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"

अर्थात् रमणीय अर्थ का बोध करानेवाला शब्द ही काव्य है।

६. भामह, उद्‌भट, रुद्रट, आनंदवर्धन आदि कुछ ऐसे ही कवि हैं, जिन्होंने कहा -

" शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"

अर्थात् जो शब्द और अर्थ के सहित हो वही काव्य है।

७. वामन ने काव्यालंकार में कहा -

"काव्यशब्दोयं गुणालंकार संस्कृतयोः शब्दार्थयो वर्तते।"

अर्थात् गुण और अलंकार से परिष्कृत शब्द और अर्थ को ही काव्य बताया है।

८. कुन्तक ने अपने वक्रोक्ति जीवित में कहा -

"शब्दार्थौ सहितौ वक्र कवि व्यापार शालिनी।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यम् तद्विदाह्लाद कारिणी।।"

अर्थात् असाधारण कवि-व्यापार से युक्त और असाधारण कवि धर्म जाननेवाले लोगों को प्रसन्न करनेवाली रचना में जो व्यवस्थित हितकर शब्द और अर्थ होते हैं, उन्हीं को काव्य कहते हैं।

९. गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के बालकाण्ड में प्रसंगवश काव्य की परिभाषा बताते हुये कहा -

"सरल कवित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान ।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनिकरहिं बखान ।"

अर्थात् जो कविता सरल हो, यानी कहते ही समझ में आ जाय और जिसमें किसी विमल कीर्तिवाले महापुरुष का वर्णन हो, उसी कविता का चतुर लोग आदर करते हैं। वही कविता श्रेष्ठ होती है, जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक बैर भुलाकर उसकी बड़ाई करने लगे।

१०. आचार्य रामचंद्र शुक्लः-

"काव्य वह साधन है जिसके द्वारा हम शेष सृष्टि के साथ अपने रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह करते हैं।"

विदेशी आचार्यों के मतः-

१. शैल्ली के अनुसार -

"प्रफुल्लित जीवन के सर्वोत्तम क्षणों का संगमक संग्रह ही काव्य है।

२. अरस्तू ने कहा -

महाकाव्य, त्रासद, कविता, प्रहसन, स्तोत्र काव्य, वंशी आदि अपने अधिकांश रूप में तथा अपनी भावनाओं में अनुकरण के रूप-मात्र हैं।

३. जान मिल्टन ने कहा कि -

इंद्रियों को आनंद देनेवाली तथा भावात्मक पदरचना ही काव्य है।

४. जानसन ने कहा कि -

काव्य केवल छंदात्मक रचना है और एक कला है, जिसके द्वारा आनंद का गठबन्धन हो सके।

५. वर्ड्सवर्थ ने कहा -

काव्य संपूर्ण ज्ञान की साँस और सूक्ष्मतर चेतना है।

६. कोलरिड्ज ने कहा -

काव्य साहित्य रचना का वह प्रकार है जो विज्ञान से उल्टा है।

७. लार्ड मेकाले का कथन है -

शब्दों का इस प्रकार से प्रयोग करना ही कविता है कि - वे कल्पना में भ्रांति उत्पन्न करें जो चित्रकार रंग से करता है।

काव्य के बारे में उपर्युक्त परिभाषाओं के साथ ही साथ उसके प्रकार भी हैं।

काव्य मुख्यतः पाँच प्रकार के हैं -

काव्य

कथात्मक	वर्णनात्मक	विचारात्मक	भावात्मक	चित्रात्मक

कथात्मक:

- महावंश काव्य
- एक वंश काव्य
- महा काव्य
- खण्ड काव्य
- एकार्थ काव्य
- गीति-काव्य
- मुक्तक प्रबन्ध
- नाट्य प्रबन्ध

महावंश काव्यः- जिनमें एक नायक के बदले अनेक वंशों के अनेक नायकों की अनेक कथाओं का वर्णन है, जिसे "एपिक" भी कहते हैं। जैसे - "महाभारत, इलियड"।

एकवंश काव्यः- जिनमें किसी एक ही वंश का एक साथ चरित्र कहा गया है - जैसे - रघुवंश।

महाकाव्यः- जिनमें अनुबंधपूर्ण कथा, वर्णन, रस और चरित्रनायक हो।

खण्डकाव्य:- किसी बड़ी कथा का एक अंश लेकर उसपर काव्य रचा जाता है जो महाकाव्य की शैली में ही होती है।

एकार्थ काव्य :- वे हैं, जिनमें कथा का कोई उद्दिष्ट पक्ष होता है, जिसमें महाकाव्य का पंच संधि विधान विस्तार नहीं होता है।

गीतिकथा:- कुछ हैं, जो गीतों के रूप में या गेय पदों के रूप में भी कथायें लिखी हैं।

मुक्तक प्रबन्ध:- जिनमें गीत न होकर अलग-अलग छन्द हैं, जो रूप में तो मुक्तक हैं, किंतु सब मिलकर कथा बन जाते हैं।

इस तरह देखने पर भारतीय प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने अभिव्यक्त भारतीय साहित्य शास्त्रीय परंपरा के अनुसार काव्य को स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त किये हैं।

जैसे - दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य।

दृश्य काव्य :- जिस काव्य की रचना रंगमंच पर अभिनीत हो तथा अभिनय को आँखों से देखा जाय, वह "दृश्य काव्य" है। कुछ नाटक दृश्य प्रधान होते हुये भी श्रव्य हैं।

श्रव्य काव्य:- जिस काव्य की रचना अभिनेय न होकर पाठ्य ही होते हैं। श्रवण मात्र से ही श्रोताओं के हृदयों को आनंदित करनेवाला है, वह श्रव्यकाव्यहै। श्रव्य काव्य भी मात्र श्रव्य-काव्य नहीं होता, कल्पना में वह दृश्य बिम्बात्मक भी होता है।

श्रव्य काव्य के तीन भेद हैं -

१. गद्य काव्य, २. पद्य काव्य एवं ३. चम्पू काव्य।

१. गद्यकाव्यः- संस्कृत में गद्य काव्य शब्द का प्रयोग अधिकतर कथा और आख्यायिका के अर्थ में मिलता है।

दण्डी के द्वारा दी गयी विवेचना यह है कि -

"पद्यं गद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्।
अपादः पद सन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिकाकिल ।"

प्राचीन काल में काव्य की रचना काव्य में ही की जाती थी। "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" वाली उक्ति गद्यकाव्य की महत्ता की ओर संकेत करती है।

गद्य काव्य को अंग्रेजी में"पोयटिक प्रोज" का नाम दिया गया है।

रामकुमार वर्मा के मत के अनुसार गद्य काव्य साहित्य की भावनात्मक अभिव्यक्ति है। इसमें कल्पना और अनुभूति काव्य उपकरणों से स्वतंत्र होकर मानव जीवन के रहस्यों को स्पष्ट करने के लिये उपयुक्त और कोमल वाक्यों की धारा में प्रवाहित होती है।

२. पद्य काव्यः- पद्य काव्य वह है जिसमें छंदोबद्ध रचना है। ये पद्य काव्य फिर दो प्रकार से रचे जाते हैं । जैसे - १. मुक्तक और २. प्रबन्ध।

मुक्तक काव्यः- साधारणतः स्फुट रचनाओं को मुक्तक कहा जाता है। इसमें प्रत्येक पद्यकी स्वतंत्र सत्ता रहती है। और वह स्वतंत्र रूप से अपना भाव व्यक्त कर देता

है। उसमें भाव-व्यंजना की प्रधानता रहती है। और वस्तु के रूप विधान का अग्र आग्रह कम रहता है। मुक्तक रचना प्रायः स्वानुभूति मूलक होती है।

मुक्तक शब्द मुक्त शब्द में "कन्" प्रत्यय जोड़ने से बना है। मुक्त शब्द में "मुंच" धातु है जिसका अर्थ होता है, त्यागना, उन्मुक्त करना, खोलना, फेंकना..। मुक्तक शब्द का प्रयोग प्राचीन साहित्य में कई अर्थों में मिलता है। इसका प्रयोग सर्व प्रथम अग्नि पुराण में मिलता है जैसे -

"मुक्तकं श्लोक एवैक श्चमत्कार क्षमः सताम्।"

अर्थात् मुक्तक एक ही श्लोक को कहते हैं। यह सहृदयों में चमत्कार का संचार करने में समर्थ होता है। ध्वनिकार ने लिखा है कि - "प्रबन्ध मुक्तके वापि रसादीन बन्धमिच्छता।"

आचार्यशुक्ल रामचंद्र शुक्ल का कथन है - "मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनमें हृदय कलिका थोड़ी देर के लिये खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" इसीसे यह समाजों के लिये अधिक उपयोगी होता है। इसमें उत्तरोत्तर दृश्यों द्वारा संगठित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि एक रमणीय खण्डदृश्य इस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक कुछ क्षणों के लिये मंत्र-मुग्ध हो जाता है।

कई स्थलों पर मुक्तक के स्वरूप पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। मुक्तक काव्य की सबसे प्रमुख दो विशेषतायें हैं -" भाषा की समासशक्ति और कल्पना की समाहार शक्ति।" इसमें कथानक या घटना का कोई क्रम निर्धारित नहीं रहता और न जीवन को चित्रित करते समय कवि को उसके आगे-पीछे जाने की जरूरत होती है। मुक्तक रचनायें भावों के सम्मुख वस्तु को भुला देती हैं।

<u>प्रबन्ध काव्यः</u>- प्रबन्ध काव्य पद्य काव्य का एक भाग है। इसमें पद्य परस्पर सापेक्ष्य रखते हैं। इसके पद्य कथासूत्र या क्रमबद्ध वर्णन से संबद्ध होते हैं। वे संबद्ध या सामूहिक रूप से अपने विषय का ज्ञान कराते हैं और रसोद्रेक में समर्थ होते हैं। इस तरह मुक्तक एवं प्रबन्ध का भेद किया गया है जैसे -

"अनिबद्ध मुक्तकं, निबद्धं प्रबन्धरूपमिति प्रसिद्धिः"

इस प्रबंध में रूप व्यंजना भी चलती है। इसमें पात्रों की प्रकृति जन्य अनुभूति ही भावों का आधार होता है। इसका कथानक पात्रों के जीवन के पूर्वापर-संबंध का निर्वाह करना पड़ता है। इसमें घटनाओं का एक क्रम होता जिसके साथ काल और परिणाम की संगति रखनी पड़ती है। यह भावों के साथ वस्तु विधान को लिये चलता चलता है। और सामूहिक रूप से अपना संदेश और परिणाम छोड़ जाता है।

शुक्ल जी प्रबन्ध के बारे में लिखते हैं - यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" और यदि प्रबन्ध माला है तो मुक्तक केवल एक सुमन।"

प्रबन्ध में सर्वत्र सानुबन्ध कथा होती है। उस कथा में पूर्वापर संबंध एवं सांग रस परिपाक अवश्य पाया जाता है। मुक्तक काव्य में इनका अभाव होता है। और प्रबन्ध में सू संपूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार प्रबन्ध काव्य जीवन के नियत क्रम का अनुसरण करके रस सिद्धांत द्वारा उसको लोक-हृदय की वस्तु बन देनेवाला वाग्विधान है।

इस प्रबन्ध काव्य के भी विषय के परिणाम के आधार पर भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विद्वानों ने भेदों का निर्देश किया है।

<u>भारतीय विद्वानों के मतानुसारः-</u> अधिकांश संस्कृत आचार्यों ने प्रबन्ध के स्थूल रुप से दो भेद माने हैं - १.महाकाव्य, एवं २. खण्ड काव्य।

<u>पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसारः-</u> प्रबन्ध काव्य पाश्चात्य आचार्य हडसन के अनुसार चार भेद हैं। १. वीरगीत, वव (बैलेड), २. महाकाव्य(एपिक), ३.पद्यमय रोमांस, और ४.अभिनयात्मक काव्य(ड्रामेटिक पोयट्री)

इस तरह देखने पर मुख्यतः प्रबन्ध काव्य स्थूल रुप से तीन प्रकार हैं - १. महाकाव्योन्मुख, प्रबन्ध काव्य, २. महाकाव्य एवं ३. खण्ड काव्य।

१. <u>महाकाव्योन्मुख प्रबन्धकाव्यः-</u> इसके अंतर्गत ऐसे प्रबन्ध काव्य रहते हैं जिनमें न तो महाकाव्य के वैधानिक लक्षण मिलते हैं और न खण्डकाव्य की विशेषतायें ही उपलब्ध होती हैं। ऐसे प्रबन्ध अधिकतर लिखे तो महाकाव्य रचना की दृष्टि से जाते हैं, किंतु किन्हीं कारणों से सफल महाकाव्य नहीं हो पाते। ऐसे प्रबंन्ध काव्यों को इसके अंतर्गत रखते हैं।

२. <u>महाकाव्य</u>:- इस महाकाव्य के विषय में प्राचीन आचार्यों ने विस्तृत रूप से विवेचन किया है।

सर्व प्रथम काव्य का लक्षण भामह कृत काव्यालंकार में है। बाद दण्डी, वामन, आनंदवर्धन, रुद्रट, जगन्नाथ ने विशेष रूप से इनका विशद विवेचन किया है। लक्षण ग्रंथों के क्रमिक अध्ययन से प्रतीत होता है कि काव्यों में अलंकारों, रीतियों ध्वनियों, वक्रोक्तियों और रसों की मुख्य प्रवृत्तियाँ और मान्यतायें क्रमिक विकास-क्रम से फूलती-फलती रही और रसों की मान्यता ही अंत में सिद्धांत रूप में स्थिर रही। यदि अलंकार रीति आदि काव्यात्मक रस के अंग बन गये शब्द और अर्थ इसके शरीर बने।

<u>महाकाव्य की परिभाषा</u>:- महाकाव्यों के स्वरूप पर पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों कोटि के आचार्यों ने विचार किया है।

<u>भामह की परिभाषा</u>:- संस्कृत में महाकाव्य के स्वरूप पर विचार करनेवाले सर्वप्रथम आचार्य भामह थे। उन्होंने निर्देश किया -

" सर्ग बन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत् ,
अग्राम्य शब्दमर्थंच सालंकार सदाश्रयम् ॥
मन्त्र दूत प्रयाणाजिन नायकाभ्युदयं च यत्,
पंचभिः संधिभिर्युक्तं नाति व्याख्येय मृद्धिमत्।"

उसके संबंध में कई पाश्चात्य आचार्यों ने भिन्न भिन्न परिभाषायें दीं। जैसे-

१. <u>शुक्न</u>:- उनके अनुसार प्राचीन घटनाओं का विस्तृत वर्णन ही महाकाव्य है।

२. शैली:- महाकाव्य में प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार की घटनाओं का वर्णन किया जा सकता है।

इस तरह देखने पर महाकाव्य में तीन मुख्य अंग होते हैं - १. कथावस्तु, २. चरित्र और ३. वस्तु व्यापार चित्रण।

१. कथावस्तु:- यह महत् होनी चाहिये। वस्तु का विन्यास सर्गों में किया जाना चाहिये। नाटकों की संधियों आदि की योजना भी यथास्थान की जानी चाहिये। महाकाव्य की प्रमुख कथावस्तु का प्रमुख कोई घटना होनी चाहिये। सर्वत्र सक्रियता होनी है। जिससे महाकाव्य में एक सजीवता आ जाती है। इस तरह कथावस्तु उत्पाद्य अनुत्पाद्य और मिश्र तीनों प्रकार की होती है। किंतु महाकाव्य में अधिकतर अनुत्पाद्य और मिश्र कथाओं की ही योजना की जाती है।

२. चरित्र:- महाकाव्य का सबसे महान् तत्व है नायक। वह नायक धीरोदात्त, अभिजात कुलोद्भूत, को देवता या महा पुरुष होता है। महाकाव्य में नायक के साथ ही साथ प्रतिनायक भी होता है।

वस्तु व्यापार चित्रण:- भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में विविध प्रकार के चित्रणों का होना बहुत आवश्यक ठहराया है। प्राय: सभी आचार्यों ने नगर वर्णन, समुद्र वर्णन, सन्ध्या वर्णन, प्रात: वर्णन आदि की स्थिति को महाकाव्य का आवश्यक लक्षण माना है। प्रकृति वर्णनों के साथ ही साथ महाकाव्यों में प्रेम, विवाह, मिलन, कुमारोत्पत्ति आदि घटनाओं को भी आवश्यक बताया गया है।

आचार्य मम्मट की व्याख्या के अनुसार काव्य ब्रह्मा की छ: रसों की सृष्टि

है जिसमें सभी अन्य श्रेय पदार्थों को भुलाकर अद्भुत आनंद देनेवाला तथा नवरस प्रधान और लोकोत्तर वर्णना निपुण कवि का कर्म है। इस तरह "काव्य" जीवन की वह व्याख्या है जिससे सामान्य जन भी अलौकिक प्रतिष्ठान पर पहुँचकर श्रेय की प्राप्ति कर सकता है।

जिस काव्य से अलौकिक जीवन की संपूर्ण अभिव्यक्ति के द्वारा मानव का समुचित मार्ग दर्शन होता है, वह महाकाव्य है। प्राप्त काव्यों में सर्व प्रथम आदि काव्य "वाल्मीकीय रामायण" आता है। इसकी कायविपुलता, वर्णन वैविध्य, कविकर्म दक्षता, चरितोदात्तता, रसात्मकता, आदि गुण उसे सर्वथा लक्षणानुसारी महाकाव्य के निष्कर्ष पर खरा उतार देते हैं। दूसरा "महाकाव्य है "महाभारत"। उनके पश्चात् कविकुल गुरु कालिदास के "रघुवंश" और कुमारसंभव, अश्वघोष के सौंदरनंद और बुद्धचरित मुख्य रुप से प्राप्त हैं।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में महाकाव्य के लक्षण इस तरह प्रस्तुत किये हैं -

महाकाव्य में सर्गबंध के प्रधान लक्षण के साथ एक सत्कुलीन धीरोदात्त नायक अथवा एक कुलोत्पन्न अनेक नायक होने चाहिये। शृंगार, वीर, और शांत रसों में ही कोई एक रस प्रधान रस हो सकता है। शेष सभी रस अंगीभूत रस हो सकते हैं। सभी नाटक संधियों के साथ हों तथा उनके कथा पात्र ऐतिहासिक हो अथवा कल्पना प्रसूत हों। आरंभ नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक हो और कहीं कहीं खलों और सज्जनों की निंदा-स्तुति होनी चाहिये। सभी सर्गों के आरंभ में एक छंद हो और

और अंत में बदल कर दूसरा छंद होना चाहिये। सर्ग न तो अति विस्तृत हो और न अति संक्षिप्त तथा संख्या में आठ से अधिक हों। कहीं-कहीं एक ही सर्ग में अनेक छंद भी हो सकते हैं। किंतु सर्ग के अंत में अगले सर्ग की कथा की भूमिका हो जानी चाहिये। प्रातः या संध्याकाल, ऋतुओं, सरोवर, मृगया, आदि के भी वर्णनहोने चाहिये। सर्गों के ना आख्यान के नाम से हों तथा सर्ग के स्थाव पर आश्वास, स्कन्धक और गालि तक भी हो सकता है। अपभ्रंश काव्य में सर्ग के स्थान पर "कड़वक" का प्रयोग होता है। उनमें अपभ्रंश छंदों का विधान भी किया गया है।

खण्डकाव्यः- खण्डकाव्य में जीवन के किसी एक ही पहलू या घटना को प्रमुख स्थान दिया जाता है। इसमें केवल आकार को छोड़कर प्रायः अन्य बातें महाकाव्य जैसी हो जाती हैं। संस्कृत के आचार्यों ने खण्डकाव्य के स्वरूप का विवेचन विस्तार से नहीं किया। साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने खण्डकाव्य के विषय में इतना ही कहा है - "महाकाव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाली काव्य कृति को खण्डकाव्य कहते हैं। -

"खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैक देशानुसारिच।"

गद्य में उपन्यास और कहानी में जो अंतर है, वही अंतर महाकाव्य और खण्डकाव्य में है। महाकाव्य और खण्डकाव्य में आकार, प्रकार एवं प्रतिपाद्य विषय में अंतर है। इस खण्डकाव्य में महाकाव्य की तरह कथानक का बहुत विस्तार नहीं होता। और आदि से अंत तक एक ही कथा को स्थान दिया जाता है। प्रासंगिक कथाओं और घटनाओं का अभाव-सा ही रहता है। कथानक के अधिक व्यापक और विस्तृत नहीं रहने के कारण खण्डकाव्य में सर्गों की संख्या भी सीमित होती है। खण्डकाव्य में

जहाँ कथानक जीवन के एक अंग तक सीमित न होकर व्यापक हो जाता है, वहाँ वह महाकाव्य में जीवन के अधिक निकट आता है।

खण्डकाव्य में किसी रोचक और मार्मिक पक्ष का ही उद्घाटन किया जाता है। कवि इसके लिये किसी रोचक, रमणीय, भावोद्बोधक घटना, परिस्थिति या प्रसंग की कल्पना करता है। और अपने वर्णन सौष्ठव से प्रभावपूर्ण और मर्म-स्पर्शी बना देता है। इनके अलावा खण्डकाव्य में कुछ और गुण हैं -

१. प्रभावान्विति:-खण्डकाव्य में एक ही प्रभावान्विति होती है। यही कथावस्तु को समुचित घटना प्रदान करती है। यही कारण है कि संधियों आदि के नियोजन के बिना ही खण्डकाव्य में कथावस्तु समुचित रूप से सुसंगठित प्रतीत होती है।

२. निर्बाध वर्णन प्रवाह:- खण्डकाव्य की दूसरी विशेषता है - उसकी निर्बाध अभि-व्यक्ति। उसमें तीन प्रमुख बातें हैं ब जैसे -

१.क्रिया व्यापार की निर्बाध अभिव्यक्ति

२. अवान्तर कथाओं और घटनाओं आदि का परित्याग।

३. चरित्र-चित्रण ।

III) चम्पू काव्य:- गद्य और पद्य अर्थात् छंदरहित रचना एवं छंदोबद्ध रचना इन दोनों की मिश्रित रचना ही "चंपू काव्य" है।

अब काव्य के विभिन्न रूप व प्रकार इस प्रकार दिये जा सकते हैं ।

काव्य

- दृश्य काव्य
  - रूपक
  - उपरूपक
- श्रव्य काव्य
  - गद्य काव्य
  - पद्य काव्य
    - मुक्तक काव्य
    - प्रबंध काव्य
      - महाकाव्योन्मुख प्रबंधकाव्य
      - महाकाव्य
      - खण्डकाव्य
- चंपू काव्य
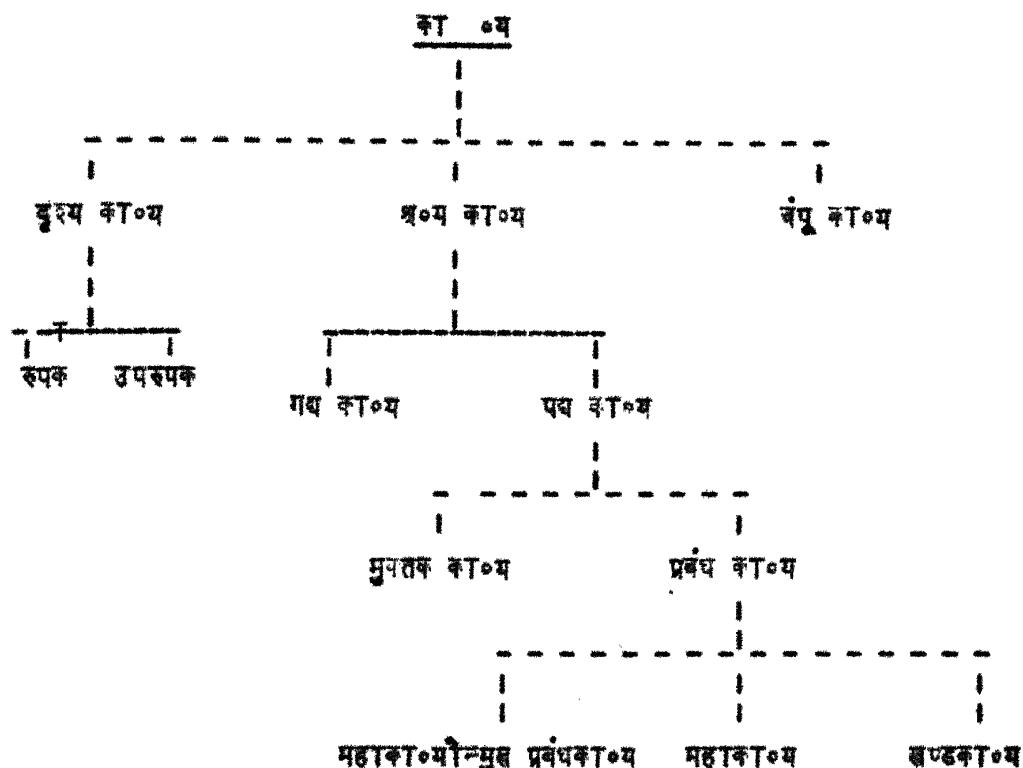
प्रसाद काव्यः- प्रसाद ने काव्य की दो श्रेणियाँ की हैं। १.अभिनयात्मक(नाटक) और २. वर्णनात्मक(काव्य)। गीतिकाव्य और पद्य काव्य इस वर्णनात्मक के अंतर्गत आते हैं। फिर पद्य काव्य के दो भेद हैं - १.काल्पनिक या आदर्शवादी और २.यथार्थवादी।
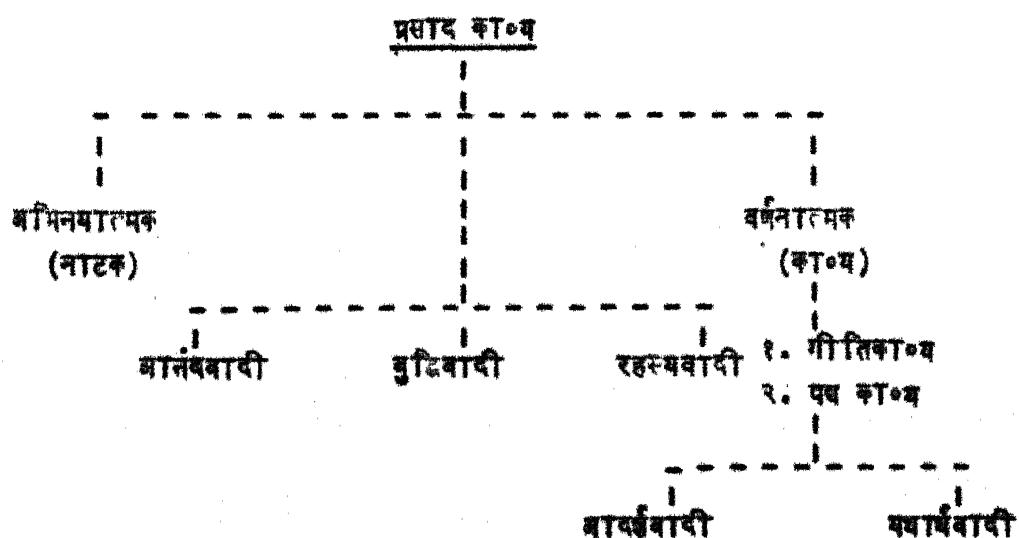
प्रसाद के द्वारा काव्य-आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है, वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा के रूप में बताया है।

: : : : : : : :

तृतीय अध्याय

रूपक के प्रकार एवं तत्व

-: तृतीय अध्याय :-

रूपक के प्रकार एवं तत्व

काव्य दो प्रकार के होते हैं १.दृश्य काव्य और २. श्रव्य काव्य। इसी दृश्य काव्य को संस्कृत आचार्यों ने रूपक नाम दिया है। रूपक में अभिनय करनेवाला किसी दूसरे व्यक्ति का रूप धारण करके उसके अनुसार हाव-भाव करता और बोलता है। इसलिये ऐसे काव्य को "रूपक" नाम दिया गया है। इस तरह रूप रंगमंच पर अभिनीत किये जाने की वस्तु है। रूपक ऐसे प्रदर्शन को भी कहते हैं जिसमें अभिनय करनेवाला किसी के रूप, हाव, भाव, वेश-भूषा, बोल-चाल आदि का अच्छा अनुसरण करे कि उसका और वास्तविक व्यक्ति का भेद प्रत्यक्ष न हो सके।

संस्कृत में नाटक शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में होता है। हिन्दी में जिस अर्थ में इसका प्रयोग प्रचलित है, उस अर्थ को द्योतित करने के लिये संस्कृत में "रूपक", रूप्य" और "नाट्य" शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

रूपक शब्द "रूप" धातु में "ण्वुल" प्रत्यय जोड़ने से बना है। रूपक का प्रयोग नाट्य के अर्थ में बहुत प्राचीन काल से होता आया है। नाट्य शास्त्र में अनेक स्थलों पर दशरूपक शब्द का प्रयोग नाट्य की दस विधाओं के अर्थ में किया गया है। नाट्य शास्त्र का समय ईस्वी पूर्व १-२ सदी, ईसवी बीच में निश्चित किया जाता है। अर्थात् रूपक शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता आया है।

रूपक के लिये संस्कृत में नाट्य शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। नाट्य

शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानोंमें मत भेद है।

१. नाट्य दर्पण के रचयिता रामचंद्र - नाट्य धातु से

२. आचार्य पाणिनी - नट् धातु से

३. वेबर साहब - नृत् धातु से

वास्तव में नाट्य शब्द "नट्" धातु से ही बना है। जो नृत्त् के अर्थ में के साथ साथ अभिनय का अर्थ भी देता है।

नाट्य की उत्पत्तिः- गीता के अनुसार भूतों की उत्पत्ति और समाप्ति अव्यक्त ही रहती है। *

"अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारत ।

अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवना। ।"(गीता २/२८)

अतएव प्रायः साहित्य के सभी अंगों की उत्पत्ति का विवेचन अवश्य किया जाना चाहिये। नाटक की उत्पत्ति के संबंध में भी यह बात चरितार्थ होती है।

भरत मुनि ने नाट्य शब्द को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि - संपूर्ण संसार के भावों का अनुकीर्तन ही नाट्य है।

इसको स्पष्ट करते हुये दशरूपक कार ने लिखा "अवस्थानुकृतीर्नाट्यम्।"

काव्य में नायक की जो धीरोदात्त इत्यादि अवस्थायें बतलाई गई हैं, उनकी एकरूपता जब नट अभिनय के द्वारा प्राप्त कर लेता है तब वही एकरूपता की प्राप्ति "नाट्य" कहलाती है।

अंग्रेजी में नाटक के लिये "ड्रामा" शब्द का प्रयोग किया जाता है। ड्रामा शब्द का ग्रीक में सक्रियता अर्थ होता है। परंतु ड्रामा शब्द को भारत देश में अनुकरण और अभिनय को प्रमुख तत्व माना जाता है। परंतु पाश्चात्य देशों में सक्रियता को इसका प्रमुख उपादान ध्वनित किया गया है। "मानव प्रकृति का दर्पण है" नाटक।

<u>नाटकों की उत्पत्तिः-</u> इसके संबंध में दो प्रकार के मत मिलते हैं १. धार्मिक और २.लौकिक ।

<u>धार्मिक उत्पत्ति संबंधी मतः-</u> इसमें और दो प्रकार हैं। जैसे ~~इसमें~~

१. दैवी उत्पत्ति संबंधी मत

२. वेद और रामायणादि पर आधारित मत

१. <u>दैवी उत्पत्ति संबंधी मतः-</u> नाट्य-शास्त्र ~~का~~ ~~उपर्युक्त~~ ~~मत~~ में आचार्य भरत मुनि ने नाटक की उत्पत्ति के संबंध में एक दैवी कथा का उल्लेख किया। अत्रि आदि मुनियों ने नाट्य संबंधी प्रश्न किया -

"नाट्य वेदः कथं ब्रह्मन् उत्पन्नः कस्य वा कृते ।
कत्यंगकिम्प्रमाणश्च प्रयोगश्चास्य कीदृशः ? "

इस प्रश्न के उत्तर में भरत मुनि ने कहा कि - स्वयंभू मनुंतर के बाद वैवस्वत मन्वंतर प्रारंभ हुआ। जनता में सात्विक गुणों के स्थान पर रजोगुण की प्रधानता होने लगी। उस समय इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्माजी के पास जाकर, प्रार्थना की - हे महाराज ! ऐसा खेल देखना चाहते हैं जो देखा भी जा सके और सुना भी जा सके, जिसकी उपयोगिता शूद्र जाति के लिये भी हो। तब ब्रह्माजी ने

चारों वेदों के तत्वों को लेकर पंचम वेद की रचना की । जैसे -

ऋग्वेद से - पाठ

सामवेद से - गीत

यजुर्वेद से - अभिनय और

अथर्ववेदसे - रस तत्व

लेकर नाट्य-वेद का प्रणयन किया।

"जग्राह पाठं पाठं ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेवच ।

यजुर्वेदादभिनयात् रसानाथर्वणादपि ।।"

इस नाट्य वेद की रचना करके ब्रह्माजी ने उसे महर्षि भरत को सौंप दिया।

नाटकों की लौकिक उत्पत्ति:- नाटकों की लौकिक उत्पत्ति के संबंध में कई मत मिलते हैं। जैसे -

१.लौकिक स्वांगों से नाटकों की उत्पत्ति - हिलेब्रा

२.कठपुतलियों के द्वारा - पिशेल साहब

३.छाया-नाटकों के द्वारा - ल्यूडर साहब

१. हिलेब्रा का कहना है - रामायण, महाभारत आदि में नट और नाटकों आदि की जो चर्चा मिलती है वह स्वांगों से ही संबंधित है। और कहते हैं कि - भारतीय नाटकों की प्रसादात्मकता तथा विदूषक जैसे पात्रों का अनिवार्य रूप से नियोजन नाटकों की लौकिक उत्पत्ति के ही संकेतक हैं।

२. पिशेल साहब ने भारतीय नाटकों की उत्पत्ति कठपुतलियों के खेल

से मानी है। जिस प्रकार कठपुतलियों का नियामक सूत्रधार कहलाता था, उसी प्रकार अभिनय के नियामक को सूत्रधार कहा जाता है। इसकी संबंध से स्पष्ट प्रमाणित है - नाटकों की उत्पत्ति कठपुतलियों से हुई थी।

३. ल्यूडर का कहना है - अशोक के शिलालेखों में रुप शब्द का प्रयोग हमें छाया-चित्र के अर्थ में मिलता है। छाया-चित्र पट के पीछे से ही प्रदर्शित किये जाते थे। नेपथ्य की धारणा इसी का अवशिष्ट रुप है। जैसे संस्कृत में दूतांगद नाटक छाया-नाटक है।

<u>रुपक की परिभाषाः-</u> धनंजय के अनुसार "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् रूपकं तत्समारोपात्"

<u>रुपक, उनके भेद और भेदक तत्वःक</u> अंग्रेजी में जिस अर्थ में ड्रामाशब्द का प्रयोग होता है, उस अर्थ में संस्कृत साहित्य में "रुपक" शब्द का प्रयोग होता है। अधिकतर इस आंग्ल शब्द का अर्थ "नाटक" शब्द के द्वारा किया जाता है। किंतु नाटक रुपकों का एक भेद मात्र है - नाटक रुपक के दश प्रकारों में से एक प्रकार है। इस तरह नाटक रुपक का प्रमुख भेद है।

काव्यों में दृश्य काव्य रंगमंच की वस्तु है। उसका लक्ष्य अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरंजन, उनमें रसोद्बोध उत्पन्न करना है। यही दृश्य काव्य"रुपक" कहलाता है। उसे "रुपक" इसलिये कहा जाता है कि इसमें नट पर परगत् पात्र का रामादिका आरोप कर लिया जाता है।

"रुपं तत्समारोपात्" नटे रामाद्यवस्थारोपेण

वर्तमानत्वाद्रूपकं मुख चन्द्र दिवत् ।"

प्रमुख रूप से रूपक के दस भेद किये गये हैं। वैसे तो रूपकों से ही संबद्ध १७ उपरूपक माने जाते हैं। उपरूपकों का उल्लेख धनंजय और धनिक ने नहीं किया। उन उपरूपकों के एक प्रमुख भेद–नाटिका का विवेचन है। वस्तुतः इनमें से कई भेद रूपकों के ही अवान्तर रूप है। परंतु कुछ भेद ऐसे भी हैं – जिनका मूल संबंध नाट्य से न होकर प्रमुखतः संगीत, कला और नृत्य कला से है।

रूपकों के दस भेद ये हैं, जो वस्तु, नेता एवं रस के आधार पर किये गये हैं।

"वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः (बदृटी)

किसी एक रूपक–प्रकार की कथावस्तु, उसका नायक–नायिका की प्रवृत्ति, एवं उसका प्रतिपाद्य रस उसे अन्य प्रकारों से भिन्न करता है। इस प्रकार इन दस रूपकों में से प्रत्येक एक दूसरे से वस्तु नेता, और रस की दृष्टि से भिन्न हैं।

<u>दश रूपकः</u>–

" नाटक मथ प्रकरणं भाण व्यायोग समवकारडिमा : ।
ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।।"

१. नाटक, २. प्रकरण, ३. भाण, ४. व्यायोग, ५. समवकार, ६. डिम, ७. ईहामृग, ८. अंक, ९. वीथी, और १०. प्रहसन।

इन रूपकों में प्रमुखतः दो भेद हैं। जैसे कामदी और त्रासदी। त्रासदी रूपक के प्रमुख रूप है जिसमें ६ अंक हैं। अरस्तू के मतानुसार रूपक के ६ अंग :–

१.इतिवृत्त, २.आचार, ३.वर्णन शैली, ४.विचार, ५. दृश्य तथा ६. गीत हैं।

रुपक में नाटकीय वृत्तियाँ, संगीत, नृत्य आदि का प्रमुख स्थान होने पर भी, तीन प्रमुख भेदक हैं - वस्तु, नेता और रस।

१. वस्तु:- यह रुपक का पहला भेदक है। इसे ही कथा, इतिवृत्ति, कथावस्तु आदि नाम से भी पुकारते हैं। इसमें फि दो प्रकार हैं। १. आधिकारिक वस्तु जिसमें कथा वस्तु मूल होती है और २. प्रासंगिकवस्तु जिसमें कथावस्तु गौण होती है।

आधिकारिक वस्तु:- इसका संबंध अधिकतर नायक के /फल प्राप्त करने की योग्यता से है। उसके नायक के फल की प्राप्ति से संबद्ध होती है। यह नायक के जीवन की उस महाचरिता से संबद्ध है जो निश्चित फल की और निश्चित लक्ष्य की और बढती है।

प्रासंगिक वस्तु:- इसमें भी दो भेद किये गये हैं। पताका तथा प्रकरी। जो कथा रुपक में बराबर चलती रहती है, सानुबन्ध होती है, उसे पताका कहते हैं। उस पताका कथावस्तु का नायक अलग से होता है, जो आधिकारिक वस्तु के नायक का साथी और गुणों में कुछ ही न्यून होता है जिसे पताका नायक कहते हैं। जैसे :- रामायण का सुग्रीव।

२. जो कथा रुपक में कुछ ही काल तक चलकर रुक जाती है, वह "प्रकरी" नामक प्रासंगिक कथावस्तु होती है। प्रकरी। इस प्रकार पताका और प्रकरी आधिकारिक कथा के प्रवाह में ही योग देती हैं।

इतिवृत्त मूल की दृष्टि से तीन तरह का होता है। १-प्रख्यात, २-उत्पाद्य ३. मिश्र।

१.प्रख्यात इतिवृत्त रामायण, महाभारत, पुराण आदि ऐतिहासिक

ग्रंथों के आधार पर होता है। इस प्रख्यात इतिवृत्त में कवि अपनी कल्पना के अनुसार हेर फेर करके उसकी वास्तविकता को नहीं बिगाड सकता।

२. उत्पाद्य इतिवृत्त कवि का स्वयं का कल्पित होता है। "उत्पाद्यं कवि कल्पितम्।"

३. मिश्र इतिवृत्त की पृष्ठभूमि प्रख्यात होती है, पर उसमें बहुत-सा अंश कल्पित भी होता है।

इतिवृत्त को पाँच अर्थ प्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाओं तथा पाँ संधियों में विभक्त किया जाता है। यहाँ

पाँच अर्थ प्रकृतियाँ + पाँच अवस्थायें = पाँच संधियाँ जैसे -

~~इतिवृत्त के पाँच अर्थ प्रकृतियाँ~~ ,

"अर्थ प्रकृतयः पंच, पंचावस्था समन्विताः ।
यथा संख्येन जायन्ते मुखाद्याः पंच संधयः।।"

अर्थ प्रकृतियाँ		अवस्थायें	संधियाँ
बीज	+	आरम्भ	मुख
बिंदु	+	प्रयत्न	प्रतिमुख
पताका	+	प्राप्त्याशा	गर्भ
प्रकरी	+	नियताप्ति	विमर्श
कार्य	+	फलागम	उपसंहृति

अर्थ प्रकृति :- "प्रयोजन सिद्धि हेतवः"

१. बीज:- यह एक तत्व है, जो नायक के कार्य या फल की ओर बढता है।

२. बिन्दु:-"हेतोश्छेदेतु सन्धानं बहूनां बिन्दशाफलात्"

अर्थात् हेतु का विस्मरण हो जाने पर भी फिर से स्मरण "बिन्दु" कहलाता है।

३. पताका :- जो चेतन हेतु अपने स्वार्थ के लिये प्रवृत्त होने पर भी दूसरे अर्थात् प्रधान नायक के प्रयोजन को सिद्ध करता है, वह "पताका" है।

४. प्रकरी- यदि मुख्य नायक के प्रयोजन को सिद्ध करनेवाला चेतन किसी एक देश में होनेवाला ही हो तो उसे "प्रकरी" कहा जाता है।

५. कार्य:- प्रधान फल की सिद्धि में बीज का सहकारी कर्म कहलाता है।

" बीज बिन्दु पताकाख्य प्रकरी कार्य लक्षणा:।
अर्थ प्रकृतयः पंच ~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~ज्ञाताः परिकीर्तिता:।"

अवस्थायें:-

" ~~अवस्था: पंच कार्यस्य प्रकरी कार्य लक्षणा~~

" अवस्था: पंचकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभि:।
आरंभ यत्न प्राप्त्याशा नियताप्ति फलागम:।"

जो नायक की मनोदशा से संबंद्ध है।

१. आरंभ:- अत्यंत फललाभ की उत्सुकता मात्र ही आरंभ कहलाती है।

२. प्रयत्न:- फल की प्राप्ति न होने पर उसे पाने के लिये बडी तेजी के साथ जो उपाय योजना युक्त व्यापार या चेष्टा होना।

३. प्राप्त्याशा:- जहाँ उपाय तथा विघ्न की आशंका के कारण फलप्राप्ति के विषय

में कोई एकांतिक निश्चय नहीं हो पाता, फलप्राप्ति की संभावना उपाय और विघ्नांशक दोनों में दोलायमान रहती है, वहाँ प्राप्त्याशा नामक अवस्था होती है।

४. नियताप्तिः- जब विघ्न के अभाव के कारण फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है तो नियताप्ति कहते हैं।

५. फलागमः- समस्त फल की प्राप्ति होने पर फलागम कहलाता है।

संधियाँ :- रूपक की पाँच अर्थ प्रकृतियाँ क्रमशः पाँच अवस्थाओं से मिलने पर पाँच संधियाँ होती हैं। किसी एक प्रयोजन से परस्पर संबंद्ध कथांशों को जब किसी दूसरे एक प्रयोजन से संबद्ध किया जाय तो वह संबंध संधि कहलाता है।

१. मुखः- बीज की उत्पत्ति तथा रसका आश्रयभूत मुख्य कथाभाग का अंश "मुखसंधि" कहलाता है।

२. प्रतिमुखः- मुख संधि में सूक्ष्म रूप में दिखलाई देनेवाली बीज के उद्घाटन रूप से अनुगत, प्रयत्नावस्था मात्र में व्याप्त प्रधान वृत्त का जो भाग होती है, वह मुख के आगे विद्यमान होने से "प्रतिमुख" है।

३. गर्भः- मुख्य फल के लाभ और अलाभ(आशा, निराशा) के अनुसंधान के द्वारा बीज की फलोन्मुखता से युक्त कथा भाग "गर्भ संधि" कहलाता है।

४. विमर्शः- बीज की उत्पत्ति, उद्घाटन और फलोन्मुखता बेबबबबबबबबबबबब के द्वारा पूर्ण होने के लिये प्रस्तुत जो साधन है, उसमें व्यसन आदि के द्वारा विघ्न-स्वरूप विमर्श संधि कहलाता है।

५. उपसंहृति(निर्वहण):- रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ जब एक अर्थ के लिये एक साथ समेटे जाते है तो वह निर्वहण संधि होती हैं।

नेता:- दूसरा प्रमुख नाट्य तत्व नेता के अभिधान से प्रसिद्ध है। नेता का अर्थ होता है, नायक। सामान्यतया यह पात्रों का वाचक है। भारतीय परंपरा के अनुसार "नेता" पद का अधिकारी वही व्यक्ति होता है, जिसमें कुछ विशिष्ट गुण होते हैं। जैसे :-

" नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियं वदः ।
रक्त लोकः शुचिरवाग्मी रूढ वंशः स्थिरो युवा।
बुद्ध्युत्साह स्मृति प्रज्ञा कला मान समन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्च धार्मिकः ।।"

अर्थात् नेता को विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियवादी, प्रवृत्तिमार्गी, पवित्र, वाग्मी-निपुण, उच्चवंशवाला, स्थिर स्वभाव वाला और युवा होना चाहिये। उसमें बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला आदि स्वाभाविक गुण होने चाहिये। उसमें शूरता, दृढता, तेज, शास्त्रज्ञता, धार्मिकता, आदि गुणों की अवस्थिति भी आवश्यक होती है।

नायक के चार भेद बताये गये हैं :-

"भेदैः चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्"

अर्थात् १धीरललित, २धीर प्रशान्त, ३. धीरोद्धत और ४. धीरोदात्त। धीरोदात्त नायक में आठ पुरुषोचित गुणों की अवस्थित आवश्यक बताई गई है। उनके

नाम हैं - शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, धैर्य, तेजस, लालित्य और औदार्य।

नायक के सहायक पुरुष पात्र भी होते हैं जैसे पीठमर्द, विदूषक, और विट आदि। कभी कभी एक प्रतिनायक भी रहता है।

पीठमर्द प्रासंगिक कथा का नायक होता है। यह आधिकारिक कथा के नायक की अपेक्षा हेय गुण वाला होता है और सदैव उसकी सहायता में तत्पर रहता है।

विदूषक नायक का सहचर होता है। वह नायक की प्रणय-व्यापार में उसका मनोरंजन करता है।

विट् किसी कला का विशेषज्ञ होता है। अपनी उस कला की सहायता से नायक का अनुरंजन करने में समर्थ होता है।

रस:- नाटक का प्राण-भूत तत्व रस माना गया है। इस रस के संबंध में भारत का प्रसिद्ध रस सूत्र -

"विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगात् रसनिष्पत्ति:।"

इस सूत्र की व्याख्या अनेक आचार्यों ने की है। मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में प्रमुख चार आचार्यों के सिद्धांतों का निरूपण किया है। लोचनटीका में इन चारों के अतिरिक्त कुछ और मतों की चर्चा भी की गई है। रस गंगाधर में रस-निष्पत्ति संबंधी अनेक व्याख्यानों का उल्लेख है।

जगत् की प्रतिक्रिया के स्वरूप प्रत्येक मानव के हृदय में कुछ संस्कार या वासनायें उत्पन्न होती है। योग-सूत्र में इन संस्कारों को "अनादि" कहकर उनकी सार्वकालिकता और सार्वभौमिकता व्यंजित की है। जैसे -

" तासामनादित्वंचा च्चिषो नित्यत्वात्।"

इस प्रकार की नित्य वासनाओं का अनुसंधान साहित्यक लोग प्राचीन काल से करते आये हैं। भरत मुनि ने चार वासनाओं की चर्चा इस रस के अंतर्गत की है। मम्मट ने आठ प्रकार से किया। इस तरह रसों की संख्या बढ़ती जा रही है। उसका कारण यह है कि रस का आधार वासनायें ही होती हैं, जिन्हें साहित्य में स्थायी भाव कहते हैं।

इस तरह रस में स्थायी भावों को उद्बुद्ध करनेवाली एवं आश्रय प्रदान करनेवाली सामग्री को "विभाव" कहते हैं। जैसे साहित्य दर्पण में -

" रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्य नाट्ययो ।
आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावु भौ स्मृतौ ।।

अर्थात् रत्यादि स्थायी भावों के उद्बोधक तत्व काव्य और नाटक में "विभाव" कहलाते हैं। इसमें फिर दो प्रकार हैं, आलम्बन, उद्दीपन।

<u>आलम्बनः</u>- नायक आदि होते हैं, जिनका आलम्बन लेकर रस का उद्गम होता है।

<u>उद्दीपनः</u>- रस को उद्दीप्त करनेवाले तत्व हैं।

रूपक के दस भेद हैं। उनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

१. नाटकः- इसकी कथा इतिहास-प्रसिद्ध होती है। कवि-कल्पित नहीं होती। इसका नायक कोई धीर, गंभीर, उदात्त, प्रतापी, गुणवान, राजा, राजर्षि, या कोई दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष होता है। इसमें प्रधान रस वीर या शृंगार होता है। अन्य रस इनमें से किसी के अंग होकर उसके सहायक के रूप में ही आते हैं। इसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होते हैं पाँच से अधिक अंकवाले नाटक को महानाटक कहते हैं। इसके अंक उत्तरोत्तर छोटे होने चाहिये। उनका आकार क्रमशः छोटा होता जाता है। (सात्विकी वृत्ति)

२. प्रकरणः- जिसमें नायक, फल, आख्यान वस्तु , अलग-अलग अथवा तीनों प्रकृष्ठ रूप से किये जाते अर्थात् कल्पित किये जाते हैं, वह "प्रकरण" कहलाता है।

इसकी कथा लौकिक एवं कविकल्पित होती है। इसमें प्रधान रस शृंगार होता है। नायक ब्राह्मण, मंत्री अथवा, वणिक(वैश्य) होता है। वह धर्म, अर्थ, काम मे परायण धीर होता है। इसमें नायिका कहीं कुलकन्या होती है, कहीं वेश्या और कहीं दोनों होती हैं। इसका एक भेद धूर्त, जुआरी, विट, चेटादि पात्रों से युक्त होता है, अन्य बातों में यह नाटक के समान ही मुख संधि होता है (कौशिकी वृत्ति)

३. भाणःशृंगार या वीर रस प्रधान, मुख संधि तथा निर्वहण से युक्त दस लास्यांगों से पूर्ण प्रायः साधारण जनों का मनोरंजन करनेवाला भाण कहलाता है।

उसमें धूर्तों का ही चरित्र अनेक अवस्थाओं से व्याप्त दिखाया जाता है। एक ही अंक और एक ही पात्र होता है। वह पात्र कोई बुद्धिमान वीर होता है।

वह रंगमंच पर अपनी या औरों की अनुभूत बातों को कथोपकथन के रूप में आकाशभाषित के द्वारा प्रकाशित करता है। इसका भी कथानक कल्पित होता है।

हास्यांग दस हैं :- गेय पद, स्थित, पाठ्य, पुष्पगण्डिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ, सैंधव नामक द्विगूढक उत्तमोत्तमक, उक्त औरप्रत्युक्त ।

इस भाण में धूर्त चरित्र के आधार पर दो भेद किये हैं। जैसे :१. आत्मभूत शंसी- वह जिसमें नायक अपने अनुभवों का वर्णन करता है, और २. पर संश्रय वर्णन विशेष:- वह जिसमें दूसरे के अनुभवों का वर्णन किया जाता है।

४. प्रहसन:- यह प्रहसन भाण से मिलता-जुलता होता है। अर्थात् इन दोनों में वस्तु, संधि, संध्यंग, और लास्य आदि एक जैसे होते हैं। परंतु प्रहसन में हास्यरस की अधिकता रहती है। नाट्य-शास्त्र में इसके दो भेद माने गये हैं।१.शुद्ध, २.संकीर्ण। संकीर्ण में दो अंकों का होना बतलाया है। इसमें नायक के रूप में सन्यासी, तपस्वी, पुरोहित, नपुंसक, कंचुकी आदि की योजना की जाती है।

५. डिम:- यह भी दश रूपकों में एक रूपक है। काव्यानुशासन के अनुसार डिम के लिये डिम और विद्रोह नामक शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। डिम का अर्थ है संघात अर्थात् - एक तो - घात और प्रतिघात और दूसरा - समूह। समूह परक में नायकों की क्रिया संघात का प्रदर्शन किया जाता है। इस डिम में कथा पुराण या इतिहास प्रसिद्ध होती है। यह माया, इंद्रजाल, संग्राम, क्रोध, उन्मत्त, आदि की चेष्टा तथा उपरागों (सूर्य-चंद्र ग्रहण) आदि के वृत्तांत से पूर्ण रहता है। इसमें रौद्र रस प्रधान होता है। शान्त , हास्य, और शृंगार के अतिरिक्त अन्य छः रस इसके सहायक होते हैं। इसमें

चार अंक होते हैं। प्रवेशक नहीं होते। इसमें देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महोरग, भूत, प्रेत, आदि अत्यंत उद्धत सोलह नायक होते हैं। इसमें विमर्श को छोडकर सभी संधियाँ भी रहती हैं।

६. व्यायोग उस रूपक को कहते हैं, जिसका इतिवृत्त प्रख्यात है। और नायक धीरोदात्त, या धीरोद्धत राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष होता है। जिसका आख्यान पुराण या इतिहास प्रसिद्ध होता है। इसमें पात्रों की संख्या अधिक होती है, वे सभी पुरुष होते हैं। इसमें पात्रों की संख्या अधिक होती, है, है ह एक भी स्त्री पात्र नहीं होता। गर्भ और विमर्श को छोडकर शेष तीनों संधियोंकी प्रबल योजना की जाती है। डिम के सदृश रस भी प्रदीप्त रहते हैं। इसमें स्त्री निमित्तक संग्राम दिखाने की प्रथा नहीं है। यह एकांकी रूपक है। इसमें केवल एक दिन की घटनायें ही चित्रित की जाती है।

७. <u>समवकारः</u>- इसमें कई नायकों के प्रयोजन एक साथ समवकीर्ण रहते हैं। इसीलिये इसे समपवकार कहते हैं। इसकी कथा इतिहास की कोई ऐसी घटना होती है जिसका संबंध देवताओं और असुरों से होता है। नाटक के सदृश इसमें भी आमुख आदि का विधान रहता है। विमर्श संधि को छोडकर शेषय शेषसभी संधियों की योजना की जाती है।

वृत्तियों में कौशिकी का प्रयोग प्रधान रहता है। धीरोदात्तादि गुण संपन्न बारह नायक होते हैं। तीन अंक होते हैं। प्रत्येक नायक का फल पृथक पृथक होता है। इसमें वीर रस की प्रधानता होती है। पहले अंक में मुख और प्रतिमुख इन दो संधियों से युक्त बारह नाडियों का होना आवश्यक है।

८. <u>वीथीः</u>- इसका अर्थ है मार्ग या पंक्ति। इसमें संध्यंगों की पंक्ति रहती है, इसीलिये

इसे वीथी कहा जाता है। इसमें अंकों की संख्या भाण के समान एक ही है। शृंगार रस का पूर्ण परिपाक होने के कारण उसकी सूचना दी जाती है कि जिसके औचित्य विधान के लिये कौशिकी वृत्ति की योजना की जाती है। इसमें संधियों के अंग भाण के सदृश ही नियोजित किये जाते हैं। प्रस्तावना बतलाते हुये उद्घात्यक आदि अंगों की निबंधना भी है। पात्र दो से अधिक नहीं होते। भाण की भाँति "आकाशभाषित" के द्वारा उक्ति-प्रत्युक्ति की योजना अवश्य होती है।

९. ईहामृग:- इसकी कथावस्तु मिश्र अर्थात् प्रख्यात और कवि कल्पित दोनों ही होती हैं। इसमें चार अंक और ती संधियाँ होती हैं। नायक और प्रतिनायक दोनों की कल्पना उसमें की जाती है। एक मनुष्य और दूसरा दैवी पुरुष। दोनों भी इतिहास प्रसिद्ध होते हैं। दोनों धीरोदात्त होना आवश्यक है। कभी कभी न चाहनेवाली दिव्य स्त्री के अपहरण इत्यादि के द्वारा चाहनेवाले नायक का शृंगार भास भी कुछ कुछ प्रदर्शित करना चाहिये। महात्मा के वध की स्थिति उत्पन्न करके भी उसका वध न करवाना सफल कलाकार का लक्षण है।

१०. अंक:- इसमें कथावस्तु तो प्रख्यात होती है। किंतु कवि अपनी कल्पना से उसको विस्तृत कर देता है। एक ही अंक होता है। इसका नायक साधारण पुरुष होता है। इसमें स्त्री पात्र भी कई होते हैं और उन स्त्री पात्रों का उसमें विलाप दिखलाया जाता है। इसलिये करुण रस की प्रधानता है।

उपरूपक:- अब उपरूपकों को देखने से १८ प्रकार के हैं। जैसे - १. नाटिका, २.त्रोटक, ३. गोष्ठी, ४. सट्टक, ५. नाट्य रासक, ६. प्रस्थानक, ७. उल्लाप्य, ८. काव्य, ९.प्रेङ्खण रासक, १०. प्रेंखण, ११. संलापक, १२. श्रीगदित, १३. शिल्पक, १४. विलासिका १५. दुर्मल्लिका, १६. प्रकरणिका, १७. हल्लीश और १८. भणिका।

इन उपरूपकों को नृत्य के भेद माने जाते हैं। इन रूपकों का नाम सर्व प्रथम अग्नि पुराण में मिलता है।

१) नाटिकाः- भरत मुनि ने इसको नाटी नाम से अभिहित किया है। उनके अनुसार नाटी की उत्पत्ति नाटक और प्रकरण के योग से हुई है। चार अंक होते हैं। अधिकांश पात्र स्त्रियाँ होती हैं। सांग ~~रूपक है~~। मधुर लास्यों का विधान रहता है। यह श्रृंगार प्रधान रचना है। धीर ललित राजा ही नायक हो सकता है। रानिवंश से संबद्ध राजवंश की कोई गायन-पटु, अनुरागवती, कन्या ही नायिका हो सकती है। इसमें कथावस्तु नाटक से और नायक तो प्रकरण से लेनी चाहिये। इसमें दो नायिकायें होती हैं। एक ज्येष्ठा और दो मुग्धा।

ज्येष्ठा नायक की विवाहिता पत्नी है, जो स्वभाव से प्रगल्भ, गंभीर और मानिनी होती है। नायक उसके अधीन होता है।

मुग्धा से ज्येष्ठा की इच्छा के बिना समागम भी नहीं कर सकता। इसलिये नायक को मुग्धा नायिका से मिलने में थोड़ी कठिनता रहती है। मुग्धा नायिका दिव्य और परम सुंदरी होती है। वह संगीत आदि कलाओं का अभ्यास करते हुये नायक को हर समय श्रुति गोचर और दृष्टिगोचर होती रहती है। इससे नायक का अनुराग मुग्धा के प्रति दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है। इसमें विदूषक होता है।

२. त्रोटकः- जब नाटक में लौकिक और अलौकिक तत्वों का सम्मिश्रण होता है और विदूषक का अभाव रहता है, उसे त्रोटक कहते हैं। पाँच से लेकर नौ तक अंक होते हैं। प्रत्येक अंक में विदूषक का व्यापार होता है। श्रृंगार रस प्रधान होता है।

३.सट्टकः- यह प्रकार नृत्य पर आधारित कहा गया है। उसकी रचना मागधीऔर

शौरसेनी प्राकृत में मानी गयी है। इसमें कौशिकी और भारती वृत्तियाँ प्रधान रहती है। संधियाँ उसमें नहीं होती हैं। इसमें जो अंक होता है, उनका नाम दिया गया है - जवनिका"

४. भाणिका:- इसका स्वरूप मसृण होता है। इसकी कथावस्तु हरिहर, भवानी, स्कन्द, और प्रमथाधिप से संबंधित होती है। क्रिया-व्यापार का वेग इसमें बड़ा तीव्र रहता है। राजा की प्रवृत्तियाँ होती है। नायक मन्दमती तथा नायिका उदात्त होती है। संगीत का प्राधान्य भी रहता है। इसमें एक ही अंक होता है।

५. रासक:- इसमें एक अंक, सुश्लिष्ट नांदी, पाँच पात्र, तीन संधियाँ, कई भाषायें होती है। सूत्रधार नहीं होता है। नायिका और नायक प्रसिद्ध होना आवश्यक है। इसमें उदात्त भाव उत्तरोत्तर प्रदर्शित किये जाते हैं।

६. नाट्य रासक:- इसमें एक ही अंक होता है। बहु ताल-लय की स्थिति, उदात्त नायक और उपनायक होते हैं। शृंगार सहित हास्य रस प्रधान रहता है। नायिका "वासक सज्जा" होती है। लास्यांगों का नियोजन होता है।

७. प्रस्थानक:- दो अंको का रूपक है। यह नृत्य का एक प्रकार मात्र है। इसका नायक दास, उपनायक हीं पुरुष और नायिका दासी होती है।

ये उपर्युक्त सातन उपरूपकों में भी मुख्य हैं।

८. गोष्ठी:- यह प्रसिद्ध एकांकी है। पाँच-छः स्त्रियों और नौ दस सामान्य पुरुषों की भाव-भंगिमायें चित्रित की जाती है। काम शृंगार की प्रधानता रहती है।

९. उल्लाप्य:- इसमें एक अंक, दिव्य कथा, धीरोदात्त नायक एवं शृंगार तथा करुणा रस होते हैं। कुछ इस में तीन अंक मानते हैं। युद्ध प्रधान होता है। पृष्ठभूमि संगीत इसका प्रमुख लक्षण है। प्रेक्षणा में सूत्रधार नहीं रहता है। नांदी और प्ररोचना नेपथ्य से पीछे से विहित की जाती है।

१०. प्रेक्षण:- इसमें एक ही अंक होता है। नायक हीन पुरुष होता है। सूत्रधार नहीं होता। नांदी एवं प्ररोचना नेपथ्य से पढ़ी जाती है।

११. इसमें तीन या चार अंक होते हैं। नायक पाखंडी होता है। शृंगार और करुण रस नहीं होते हैं। इसमें नगर के घेरे संग्राम आदि का वर्णन होता है।

१२. काव्य:- इसमें एक अंक और हास्य रस होता है। गीतों की अधिकता होती है।

१३. श्रीगदित:-इसमें कथा प्रसिद्ध होती है। यह एक अंक का होता है। नायक धीरोदात्त और नायिका प्रख्यात होती है।

१४. शिल्पक:- इसमें रसप्रधान चार अंक होते हैं। शांत और हास्य के अतिरिक्त अन्य रस होते हैं। नायक ब्राह्मण होता है। इसमें मरघट, मुर्दे, आदि का वर्णन रहता है।

१५. विलासिका:- यह शृंगार-बहुल, एक अंकवाली, विदूषक विटपीठ, मर्द से विभूषित , हीन गुण नायक से युक्त छोटी कथावली है।

दुर्मल्लिका:- इसमें चार अंक होते हैं। पहले अंक में विट् की क्रीडा, दूसरे में विदूषक
(१६)
का विलास, तीसरे में पीठमर्द का विलास-व्यापार और चौथे में नागरियों की

क्रीडा रहती है। इन चारों अंकों का व्यापार क्रमशः ८,१०,१२ और २० घडी का रहता है। इसमें पुरुष पात्र सब चतुर होते हैं, पर नायक छोटी जाति का होता है।

१७. प्रकरणिका:- इसमें नायक व्यापारी होता है। नायिका उसकी सजातीया होती है। ये बातों में "प्रकरण" के सदृश होती है।

१८. हल्लीश:- इसमें एक ही अंक होता है। सात-दस तक स्त्रियाँ होती हैं और एक उदात्त वचन बोलनेवाला पुरुष रहता है। इसमें गाने ताल, और लय अधिक होते हैं।

इस प्रकार अंतिम १८ उपरूपक न तो प्रसिद्ध हैं। इन सब रूपकों और उपरूपकों की मूल प्रकृतियद्यपि नाटक के अनुसार ही है, तथापि इनमें औचित्य के अनुसार नाटक के यथासंभव अंगों का समावेश होता है। इन सभी रूपक और उपरूपक भेद को "नाटक" ही कहा जाता है।

इस तरह संस्कृत नाट्य-शास्त्र में रूपक तथा उनके भेद प्रभेदों का बडे विस्तार से विवेचन किया गया है। इनसे यह स्पष्ट होता है कि - भारतीय नाट्य-कला एकांकी नहीं है। न केवल आदर्श प्रधान और न केवल यथार्थ मूलक। इन दोनों को सुंदर समन्वय चित्रण ही है, जिसमें संपूर्ण जीवन की, संपूर्ण मानवों की, हृदय-गाथा प्रतिबिंबित मिलती है। समुन्नता, स्वाभाविकता, सजीवता आदि सभी दृष्टियों से ये रूप बेजोड है।

इस तरह रूपक पण्डित और मूर्ख सभी को समान रूप से आनंद दे सकता है। काव्य लिखने की अपेक्षा रूपक लिखने में अधिक कौशल की आवश्यकता होती है। रूपक कार को दर्शक, अभिनेता, नाट्य-प्रयोक्ता, रंगमंच की परिधि, और वेश भूषाने के

समय का ध्यान रखकर लिखना पड़ता है। इन सभी दृष्टियों से रुपक सर्वश्रेष्ठ तथा कठिन काव्य-रचना है।

एकांकी नाटक :- एकांकी नाटक नाटक के रुपकों एवं उप-रुपक के अंतर्गत एक भाग मात्र ही है। इन एकांकियों के स्वरुप को देखने से यह स्पष्ट हो जाती है, संस्कृत में इन एकांकी नाटकों का विस्तृत अधिक है। जैसे -

व्यायोग, भाण, प्रहसन, वीथि, नाटिका, गोष्ठी, नाट्य-रासक, उल्लाप्य काव्य, श्रीगदित, विलासिका, प्रकरणिका, हल्लीश, भाणिका अंक,

उपर्युक्त सभी एकांकी के भाग मुख्यतः उपरुपक के अंतर्गत आते हैं।

अंग्रेजी एकांकियों का स्वरुप

अंग्रेजी में आधुनिक एकांकी के स्वरुप का विवेचन बहुत मिलता है। इनमें सिडनी बॉक्स लिखित -" टैकनिक आफ वन एक्ट प्ले" परसाइवल विल्डे, -दि कन्स्ट्रक्शन आफ वह एकक्ट प्ले" वाल्टर पिंडर्कम ईटन प्रणीत, वीफ बाल्टर्स इन राइटिंग वन" , माइकील ब्लाक फोर्ट लिखित/दि कन्स्ट्रक्शन आफ वन एक्ट प्ले" उल्लेखनीयहैं। इन ग्रंथों में एकांकी के स्वरुप विस्तार से किया गया है।

१. इसमें सिडनी बाक्स द्वारा दी गई एकांकी की परिभाषा यह है कि - एकांकी का स्वरुप ऐसा नहीं होता जिसमें चरित्र चित्रण की सूक्ष्मता ओं को महत्व दिया जा

एकांकी साहित्य की वह निश्चित और संयमित विधा है, जिससे एक ही घटना को

इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है कि उसके प्रभाव - ऐक्य से पाठकों और दर्शकों का मन आकृष्ट और आक्रांत हो जाय।

२.<u>वाल्टर, पिंडर्क ईटन द्वारा दीगयी परिभाषा</u>:- अपने ग्रंथ में एकांकी के स्वरूप के बारे इस तरह प्रकाश किया -

एकांकी की प्रकृति ऐसी होती है कि उसमें नाटककार को किसी विशेष समस्या, किसी विशेष परिस्थिति अथवा घटना को इस प्रकार नियोजित करना पडता है वह धीरे धीरे अपने आप विकसित हो जाये।

ये दोनों अंग्रेजी में महत्वपूर्ण परिभाषायें हैं।

<u>हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषायें</u>

प्रसादोत्तर युग में एकांकी का अच्छा विकास हो गया है। इसी युग में कई एकांकी नाटकों की रचना की गयी है।

१.<u>डा. रामकुमार वर्मा</u>:-डा. रामकुमार वर्मा ने अपनी एकांकी संग्रहों की भूमिका में एकांकियों के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये उस तरह एकांकी के तत्वों को निर्धारित किया है कि -

१.एकांकी में किसी एक घटना या परिस्थिति से संबंधित एक संवेदना होनी चाहिये।

२. एकांकी में की आधार भूत घटनायें हमारे दिन-प्रति-दिन के जीवन से संबंधित होनी चाहिये। उनकी अभिव्यक्ति यथार्थवाद की ठोस आधार भूमि पर

होनी चाहिये।

३.संघर्ष एकांकी का प्राण है। इस एकांकी में बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के संघर्ष हो सकते हैं, किंतु आंतरिक संघर्ष की योजना से उसका सौंदर्य अधिक बढ जाता है।

४. क्रियाशीलता और गतिशीलता एकांकियों की प्रमुख विशेषता है।

५. एकांकियों में यथार्थवादी चित्रण आदर्शोन्मुख हो भी सकता है।

६. इसमें संकलन त्रय का ~~[illegible]~~ कठोरता से पालन होना चाहिये।

३)<u>पं.सद्गुरुशरण अवस्थी का मत</u>:- ये एक सफल एकांकी लेखक हैं। जब सामान्य हिन्दी कलाकार उनके नाम से भी परिचित नहीं, उस समय से एकांकी लिख रहे हैं। अपनी एकांकियों और एकांकी संग्रहों की भूमिकाओं में उसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुये इस तरह प्रस्तुत किया है - "जीवन की वास्तविकता से एक स्फुलिंग को पकडकर एकांकी नाटककार अपने रेखा चित्र अथवा सुकुमार संश्लिष्ट मूर्ति द्वारा ऐसा प्रभावपूर्ण [illegible] अपूर्व जगत् व्यंजना देने की उसमें शक्ति आ जाती है"

४. <u>सेठ गोविंददास</u>:- अपनी "नाट्यकला मीमांसा" में उन्होंने इस तरह कहा-

"एक ही विचार पर एकांकी नाटक की रचना हो सकती है। विचार के विकास के लिये जो संघर्ष अनिवार्य है उसके संबंध में पूरे नाटक में कई पहलू दिखाये जा सकते हैं। किंतु एकांकी में सिर्फ एक पहलू होता है।

५. <u>उपेन्द्रनाथ अश्क</u>:- इनके अनुसार एकांकी में मुख्यतः तीन तत्वों को मान लिया गया है। जैसे -

१. स्वरुप और समय की लघुता।

२. अभिनेयता

३. रंग संकेतों का विस्तृत नियोजन।

इस तरह समस्त आलोचकों की परिभाषाओं पर अध्ययन करने से एकांकी की स्वरुप के संबंध में सात मुख्य तत्व मान लिये गये हैं। जैसे :-

१.कथावस्तु, २. प्रभाव ऐक्य, ३.दृश्य विधान ४.चरित्र-चित्रण, ५.कथोपकथन ६.भाषा, शैली एवंअभि॰यंजित तथा ७.अभिनेयता।

इन एकांकियों की विकास के संदर्भ में चार भाग हैं जैसे -

१. भारतेंदु युगीन एकांकी:- इन्होंने एकांकी क्षेत्र में एक सराहनीय काम किया था। उन्होंने व्यंग्य, गीति, रुपक, नाट्य रसका भाव आदि कई प्रकार के एकांकियाँ रचीं। जैसे - भारत दुर्दशा, प्रेमयोगिनी, नीलदेवी, प्रेम योगिनी, माधुरी

लाला ~~किशनलाल~~ श्रीनिवास दास:- प्रह्लाद चरित्र

अयोध्या सिंह "उपाध्याय" - प्रद्युम्न विजय

काशीनाथ खत्री - सिंध देश की राजकुमारी आदि प्रमुख

२. द्विवेदी युग:के एकांकी:- इस युग के कवियों की रचनायें अपरिपक्व ही बन गयी हैं। जैसे

सुदर्शन - राजपुत की हार

रामनरेश त्रिपाठी - स्वप्नों के चित्र आदि।

इनकी रचनाओं में कला का बीजारोपण मिलता है।

३. प्रसादयुगीन एकांकी:- प्रसाद का "एक घूँट" नवीन एकांकियों का पहला अंकुर था। डा० नगेंद्र ने यह कह डाला है कि एकांकी की आधुनिक टेक्नीक का सा ?/? नाटक में ही सफल निर्वाह है। "एक घूँट" आधुनिक एकांकी के पल्लवित पादप का पहला अंकुर था जिसमें उसकी कला के सभी लक्षण दिखाई पड रहे थे।

उदयशंकर भट्ट - दुर्गा

रामकुमार वर्मा - पृथ्वीराज की आँखें

भुवनेश्वर प्रसाद - स्ट्राइक आदि प्रमुख एकांकियाँ हैं।

प्रसादोत्तर कालीन एकांकी:- प्रसाद के बाद राजकीय एवं सामाजिक कारणों से एकांकियों के विकास की गति रुक गयी। परंतु अनंतर विष्णु प्रभाकर के प्रयत्नों से कलात्मक एकांकियों का विकास अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया।

भुवनेप्रसाद मिश्र - माता

रामकुमार वर्मा - बादल की मृत्यु

उदयशंकर भट्ट - कालिदास, धूमशिखा

उपेंद्रनाथ अश्क - पापी

जगदीशचन्द्र माथुर - भोर का तारा

सुमित्रानंदन पंत ज्योत्स्ना आदि प्रमुख एकांकियाँ हैं।

एकांकी के भेद:- प्रमुखतः एकांकियों को तीन भेद मान लिये गये हैं । जैसे १. पद्य एकांकी, २. गीति एकांकी और ३.रेडियो रूपक।

इस प्रकार के अतिरिक्त दुःखान्त, सुखांत, एकांकियाँ, प्रहसन आदि के रूप में भी भेद स्वीकार किये गये हैं। आजकल इन एकांकियों की स्थिति तारापथ को पहुँच गया।

: : : : : : : : :

चतुर्थ अध्याय

गीति - काव्य परंपरा

-: चतुर्थ अध्याय :-

गीति-काव्य परंपरा

गीतिकाव्य प्रकार, तत्व:-

गीतिकाव्य परंपरा:- गीतिकाव्य की भारतीय परंपरा काव्य के अन्य रूपों की भाँति धार्मिक ग्रंथों से उत्पन्न हुई है। वेद की ऋचायें समवेत स्वर से उच्चरित की जाती थीं। "सामवेद" में आकर संगीत तत्व की प्रधानता हो गई। उसकी ऋचाओं में गेयता भी अधिक है। संगीत के वाद्ययंत्र, आडंबर, दुंदुभि, कंधवीणा आदि का वर्णन वेदों में मिलता है। गंधर्व वेद में नाट्य और संगीत की विवेचना की गयी है। वेदों का सामूहिक रीति से पाठ सस्वर किया जाता था।

संस्कृत में इस्वी शती के पूर्व गीत-काव्य का प्रचलन था। उस समय केवल धार्मिक ग्रंथों में ही नहीं, किंतु साहित्य में भी उसका प्रयोग होता था। "कालिदास" के गीतों में संस्कृत काव्य का चरम उत्कर्ष मिल जाता है। अपनी उदात्त-कल्पना और मनोरम चित्रणों के द्वारा इस कवि ने काव्य को अत्यधिक सरसता प्रदान की। यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के लिये संदेश देते समय जड और चेतना का अंतर भी भूल जाता है। वह अनुनय विनय से कहता है -

> "मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं संदेशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम
>
> खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र क्षीणः परिलघुपयः
>
> स्रोतसां चोपभुज्य।"

इनके अतिरिक्त कालिदास में प्राकृत के गीत भी मिलते हैं। इस प्रकार देखने पर गीतों के दो रूप दिखाई देते - साहित्यिक गीत और लोकभाषा संबंधी। प्रबन्धकाव्यों में भी गीत बिखरे मिलते हैं। गीतिकाव्य की रूपरेखा भारतीय वर्गीकरण के अनुसार इस प्रकार है कि -
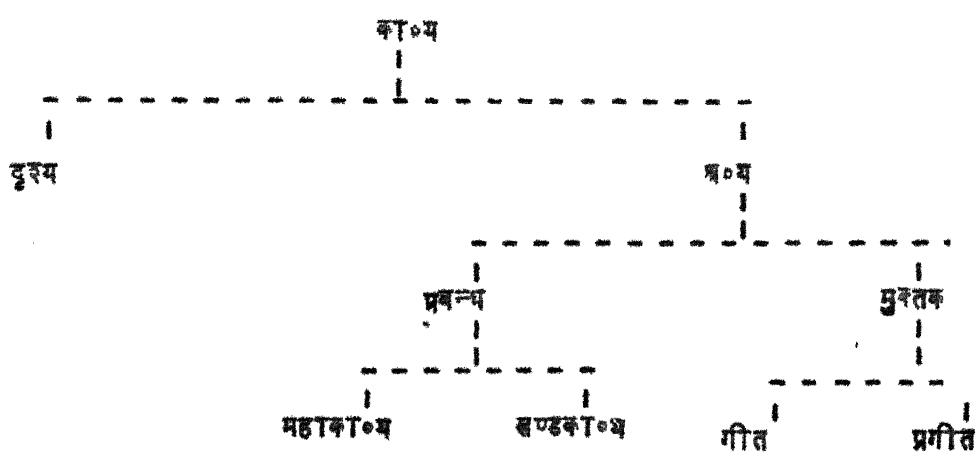
धीरे धीरे गीत रचना के स्वरूप में परिवर्तन होता गया। संस्कृत की सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य परंपरा में संगीत को विशेष स्थान प्राप्त है। कालिदास के काव्य और नाटकों के अतिरिक्त मृच्छकटिक, रत्नावली आदि में भी प्राकृत के गीत हैं, जिनमें कल्पना का स्वच्छंद स्वरूप दिखाई देता है। इस प्रकार धर्म के स्थान पर सामूहिक उत्सवों और साहित्य में गीतिकाव्य का प्रवेश हुआ।

हिन्दी साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा आरंभिक स्वरूप वीरगाथा काल में दिखाई पड़ता है। इसके पूर्व वैदिक युग से लेकर विक्रम की ११ वीं शती तक स्वतंत्र रूप में गीतिकाव्य की रचना अधिक नहीं हुई।

<u>गीतिकाव्य स्वरूप</u>:-गीतिकाव्य के संबंध में पाश्चात्य और भारतीय दोनों प्रकार के विद्वानों ने अपने अपने मत प्रकट किये हैं। "श्री गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार

मुक्तक रचनाओं को तीन भागों में विभाजित किया गया है। जिसमें गीतिकाव्य सर्वप्रथम है। जैसे – १.गीतिकाव्य, २. नीतिकाव्य, ३. रीतिकाव्य।

गीतिकाव्य के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के मत :-

हरबर्ट महोदय:- इनका कहना है "गीतिकाव्य का मूल अर्थ लुप्त होकर व्यावहारिक पक्ष ही प्रचलित हो चला है।" परंतु गीत माने भावात्मकता ही है। साधारणतया उस रचना को गीत कहते हैं जिसमें सूक्ष्म अनुभूति हो या वे प्रतिक्रियायें हों जो एकांत आनंद से जाग्रत होती हैं। "रीड महोदय" ने सुकोमल भावात्मकता को ही गीतिकाव्य का मुख्य लक्षण माना है।

अर्नेस्ट राइस साहब:- इनके अनुसार सच्चा गीत वही है, जिसमें भाव या भावात्मक विचार का भाषा में स्वाभाविक विस्फोट हो; जो शब्द और लय के सामंजस्य से सूक्ष्म भाव को पूर्णतया प्रदर्शित करता है और जिसके पदलालित्य एवं शब्द माधुर्य से वह संगीतमयी ध्वनि निकलती है। शब्द सरल, कोमल, और नादपूर्ण हो। प्रसाद पूर्ण हो और अनुभूति का सुंदर आरोह-अवरोह हो।

गीतियों की परंपरा:-

गाने का वरदान प्रकृति बड़े मुक्त हस्त से लुटाती है। प्रसिद्ध संगीतकार – गुलाम अली ने एक बार कहा था कि – गाने की तबीयत बनना ही गाना है। जब यह गाने की तबीयत बनती है, मन में एक प्रकार का सामंजस्य आ जाता है और एक तरह की हार्मोनी आती है। मन सब जगह से हटकर किसी भाव, विचार, अवसाद

विषाद, उल्लास में डूब जाता है। प्रायः उसी समय उसका उद्भव या झलक उठती है।

गीतों का आदि खोजने का अर्थ है, जीवन का आदि खोजना। गीत हजारों वर्षों से गाये जा रहे हैं। परंतु उनका मूल रूप जो आरंभ से रहा होगा, वह आज भी है। भावों की ~~वक्र~~ तीव्रता, उनकी एकता और उनकी गेयता। इस प्रकार भाव की तीव्रता और एकता से गीत आज भी मुक्त नहीं। इस प्रकार आज गीत के तीन रूप मिलते हैं।

१. जो मधुर और दीक्षित कंठ से गया जा सकता है।
२. जो सम, लय, बद्ध और तुकांत हो।
३. जिसका भाव स्पष्ट जरूर है। परंतु गीतों में मानव हृदय की पीडा व्यक्त हुई है। भक्ति काल में कबीर, सूर, तुलसी, मीरा ने अपने उद्गारों से गीतों का भण्डार भरा। कबीर के गीतों में भावों की गहराई है। किन्हीं गीतों में व्यंग्य का तीखापन भी है। तुलसी के गीतों में सात्विकता दृष्टिगोचर है। सूर के गीत हमारे जीवन के बहुत निकट हैं। सूर से बढकर भावों की तीव्रता के लिये और कोई भी न होंगे।

हिन्दी गीतों के लिये भक्तिकाल स्वर्ण युग था। जन जीवन में रंगीहुई भाषा वेदना की आग में पिघले हृदय के भाव जो कवि के मुख से निकला उससे देश प्रतिध्वनित हो उठा।

गीतों का दूसरा युग खडीबोली के अत्यंत उत्थान के साथ प्रारंभ हुआ। एक अनगढ भाषा को लेकर उसे गीत का माधुर्य देना बडा ही कठिन काम था। यहाँ ब्रज और अवधी की गीत-परंपरा ने बडा आधार दिया। विशेषकर बंगला कवि टेगूर

से भी सहायता मिली।

इस प्रकार हिन्दी में गीतपरंपरा हुई।

राइस साहब के अनुसार गीतिकाव्य के तत्व ये हैं -

१. भावात्मकता, २. शब्द और लय का सामंजस्य, ३. संगीतात्मकता, ४. माधुर्य ५. प्रवाह, ६. स्पष्टता।

भारतीय विद्वानों के मत:-

१. श्यामसुंदर दास:- गीतिकाव्य में कवि अपनी अंतरात्मा में प्रवेश करता है और बाह्य जगत् को अपने अंतःकरण में ले जाकर उसे अपने भावों से रंजित करता है। आत्माभिव्यंजना संबंधी कविता गीतिकाव्य में ही छोटे छोटे गेय पदों में मधुर भावना-पूर्ण आत्म-निवेदन से युक्त स्वाभाविक सी जान पड़ती है। शब्द के साथ साथ लय की भी साधना होती है। भावना सुकोमल होती है और एक एक पद में पूर्ण होकर समाप्त हो जाती है। कवि अपने अंतर्तम को स्पष्टतया दृष्टव्य कर देता है। अपने अनुभवों एवं भावनाओं से प्रेरित होकर उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति कर देता है।

२. महादेवी वर्मा:- इनके अनुसार सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था को विशेष गिने-चुने शब्दों में चित्रण कर देना ही गीत है। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख-दुख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता सुख-दुख की वस्तु बन जाती है।

३. रामकुमार वर्मा:- गीतिकाव्य की रचना आत्माभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से ही होती

है जिसमें विचारों की एकरूपता रहती है। इस तरह सफल गीतिकाव्य में चार बातें रामकुमार वर्मा के अनुसार आवश्यक हैं। -

१. आत्माभिव्यक्ति, २. संगीतात्मकता, ३. संक्षिप्तता, ४. विचारों की एकरूपता।

यदि गीति काव्य को परिभाषा-बद्ध करना हो तो कह सकते हैं कि - गीतिकाव्य अंतर्वृत्ति निरूपक वह निरपेक्ष रचना है, जिसमें शब्द और लय का सामंजस्य माधुर्य प्रवाहात्मकता .... संजोये रहता है।

गीतिकाव्य की मुख्य विशेषतायें

१. अन्तर्वृत्ति प्रधानता

२. संगीतात्मकता

३. रागात्मकता

४. निरपेक्षता या पूर्वापर संबंध विहीनता

५. भावातिरेकता या रागात्मक अनुभूतियों की कसावट

६. शब्द चयन और चित्रात्मकता

७. समाहित प्रभाव

८. मार्मिकता

९. संक्षिप्तता

१. अन्तर्वृत्ति प्रधानता:- पाश्चात्यों ने काव्य के दो प्रकार बताये हैं - बाह्यार्थ विषयक और काव्य है। इसमें कवि की अन्तर्वृत्तियाँ, सुख-दुःख, राग-द्वेष, आदि की सच्ची अभिव्यक्ति रहती है।

२. संगीतात्मकता:- ध्वनि और संगीत का साहित्य और जीवन से घनिष्ट संबंध है। संगीत में जीवनदायिनी शक्ति होती है। उसका प्रभाव चिरन्तन, परम,/व्या/ परम और व्यापक होता है। संगीत और लय के अनुरुप ही फल की प्राप्ति होती है। संगीत का कोई रुप मन को मुग्ध करता है। कोई आत्मा को आनंद विभोर करता है। मानव की संपूर्ण चेतना को मुग्ध करके उसे रसधारा से शराबोर करने में ही गीतिकाव्य का महत्व है।

३. निरपेक्षता:- गीतिकाव्य में एक घटना, एक परिस्थिति, एक अनुभूति का आत्मानुभूति-प्रधान वर्णन रहता है। ऐसी वर्णन पूर्ण होती है, और किसी प्रकार के पूर्वापर संबंध की आवश्यकता नहीं है। इसमें भावों और विचारों का एकरुपता रहती है।

४. भावातिरेकता:- गीतिकाव्य में सुकोमल भावनाओं और अनुभूतियों का प्रचण्ड प्रवेग रहता है। यही श्रोता के मन को ~~अप~~ आप्लावित कर देता है। इससे भाव विभोरता की अवस्था प्राप्त होती है। गीतिकाव्य में रस-निष्पत्ति के केवल दो-एक अंग ही विद्यमान रहते हैं, गीतिकाव्य में रस-निष्पत्ति के लिये बहुत ~~ह~~ कम स्थान रहता है। इस कमी को पूरा करने के लिये कवि अपनी गीत-रचना में सुकोमल भावनाओं का एक ऐसा तूफान उँडेलता है कि पाठक की चित्तवृत्ति उस तूफान में बह जाती है और वह भावमग्न हो जाता है। अगर कवि गीति काव्य में सुकोमल और मार्मिक भावनाओं का तूफान ~~स्वनन~~ उँडेले तो वह गीतिकाव्य न रहकर सामान्य मुक्तक रचना ही हो जायेगी।

५.संक्षिप्त कथन और चित्रात्मकता:- गीतिकाव्य का दायित्व प्रबन्धकार से कहीं अधिक होती है। प्रबन्धकार को अपनी लंबी-चौडी कहानी के माध्यम से मनमाने ढंग

पर कहने का अवसर होता है। किंतु गीतिकार को अपनी छोटी सी रचना में अपने भावों को पाठकों के मस्तिष्क के आगे प्रस्तुत करना पड़ता है। इसके लिये उसे शब्द-चयन और चित्र-विधान की कलाओं का आश्रय लेना पड़ता है। वह सार्थक, औचित्य पूर्ण, लाक्षणिक, व्यंजनात्मक, प्रतीकात्मक, एवं रूपात्मक शब्दों के प्रयोग से एक-एक शब्द में एक एक इतिहास ठूँस देता है। इसी शब्द-चयन कला के सहारे वह छोटी-सी रचना में बहुत बडी बातों को कहने में समर्थ होता है। कभी कभी गीतिकार को चित्र-विधान कला का भी आश्रय लेना पडता है। गीतिकार अपनी अनुभूतियों को पाठकों के हृदय तक पहुँचाने के लिये उन्हें साकार रूप प्रदान करना चाहता है। इसके लिये वह चित्र-विधान-कला का आश्रय लेता है। वास्तव में चित्र-विधान गीतिकार की सबसे महत्वपूर्ण शिल्प-विधि है।

<u>समाहित प्रभाव</u>:- एक समाहित प्रभाव उत्पन्न करने में ही गीतिकाव्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता होती है। जिस गीत का समाहित प्रभाव जितना व्यापक और मार्मिक होता है वह गीत उतना ही सुंदर माना जाता है।

<u>मार्मिकता</u>:- यह गीतिकाव्य की सबसे प्रमुख विशेषता है। यह मार्मिकता गीतिकाव्य का प्राण है। यह मार्मिकता, अनुभूति, भावना, शैली, व्यंजना, सभी में प्रतिष्ठित रहनी चाहिये। सामान्य कवि इस मार्मिकता को लाने के लिये विविध प्रकार के चमत्कारों की योजना करते हैं।

हिन्दी साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा का आरंभिक स्वरूप वीरगाथा काल में दिखाई पडता है। इसके पूर्व वैदिक युग से लेकर विक्रम की ग्यारहवीं शती तक स्वतंत्र रूप में गीतिकाव्य की रचना अधिक नहीं हुई। वीरगीतों में प्रेम और युद्ध

का प्रसंग प्रमुख था। श्रृंगार और वीर रस का समन्वित स्वरूप इन कविताओं में मिलता है। ग्राम गीतों के रूप में जनता में इनका प्रचार था। "आल्हा ऊदल" के गीत विशेष उत्सवों पर जनता गाती है। संस्कृत का मुक्तक काव्य गीतों के निकट था। परंतु गीति तत्व बहुत कुछ अस्पष्ट रह गया। बारहवीं शती में जयदेव ने भारतीय गीतिकाव्य में एक नवीन क्रांति की। गीतिगोविंद ने भारतीय गीतिकाव्य में हलचल मचा दी। उन गीतों में सौंदर्य और रस छलक उठा। राधाकृष्ण के प्रेम में तन्मय होकर कवि ने जिन गीतों का जन्म दिया, उनमें कवि का अंतर स्पन्दित हो उठता है। इन सरस गीतों में मानव के अन्तराल को छू लेने की ऐसी शक्ति थी कि - भारत में ये गीत आज भी गूँजते रहते हैं। "गीत गोविंद" का संगीत और काव्य हृदय को स्पर्श करता है। संगीत की उत्कृष्ट राग रागिनियों, का उसमें समावेश है। जैसे -

"ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजितकुंज कुटीरे।"

हिन्दी गीतिकाव्य को जयदेव के गीत गोविंद ने प्रभावित किया। सिद्धों ने भी गीतों को पर्याप्त महत्व दिया। हिन्दी गीतिकाव्य की स्वतंत्र परंपरा विद्यापति से ही आरंभ होती है। माधुर्य और श्रृंगार का नैसर्गिक स्वरूप इन गीतों का प्राण है। इन आलंबनों के द्वारा मैथली कवि ने गीतों में श्रृंगार और प्रेम का सागर लहरा दिया। विद्यापति ने राधाकृष्ण को आलंबन बनाकर हिन्दी गीतिकाव्य परंपरा का एक नवीन द्वार खोल दिया। इनमें एक प्रकार की मादकता और ऐंद्रियाकर्षण

विरह आत्म निवेदन के गीतों में "प्रेम की पीर" साकार हो उठी। मीरा की प्रेम साधना में गीत तरंगित हो उठे। जिन गीतों में उनी अंतरात्मा की करुण पुकार

है और वेदनानुभूति है।

वेदना की तीव्र अनुभूति के कारण गीतों में एक तन्मयता और वैयक्तिकता की छाप है जो उनका मुख्य आकर्षण है। भक्ति और प्रेम के सामंजस्य में गायिका ने बेसुध होकर जो गीत गाये हैं, वह हृदयसे निकल कर स्वच्छंदता से प्रवाहित होता है और सांसारिक संबंधों के प्रति विरक्ति भी पाती है। नीति और मर्यादा को पार कर जाती है। नारी की समस्त सुकुमारता के साथ निष्ठा इन गीतों में साकार हो उठती है। वैष्णव कवियों ने राधाकृष्ण के प्रेम में गीतिकायें का सागर ही लहरा दिया। ऐसी भक्त कवियों ज्ञान के स्थान पर भक्ति ही अधिक होती है।

गीतिकाव्य को प्रेम गीतों से बड़ी प्रेरणा मिलती है। गीतिकाव्य का विकास मन्थर पड़ गया। रीतिकालीन अवनत गीतिकाव्य को भारतेंदु ने अपनी मौलिक प्रतिभा से ऊपर उठाया। श्री राधाकृष्ण की भक्ति में भक्तकालीन गीति-काव्य का पुनरुत्थान तो स्वयं भारतेंदु ने ही कर दिया था। किंतु नवीन सामाजिक परिस्थितियों के साथ उसमें परिवर्तन होने लगे। इन गीतिकाव्यों का स्वरुप भारत के अतिरिक्त पश्चिम का भी योग से बदलने लगा।

<u>अंग्रेजी गीतिकाव्यः</u>- उन्नीसवीं शती का हिन्दी साहित्य समन्वय प्रधान है। अनेक संस्कृतीयों और सभ्यताओं का संगम हो रहा था। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार साहित्य का निर्माण अवश्य हो गया। अंग्रेजी की साहित्यिक प्रवृतियों में गीतिकाव्य स्वतंत्र रुप से विकसित हो चुका जिसका प्रभाव हिन्दी गीतिकायें पर पड़ा। आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य की भूमिका के रुप में पाश्चात्य धारा का प्रभाव पड़ा।

पाश्चात्यों के अनुसार गीतिकाव्य के भेद निम्नलिखित हैं -
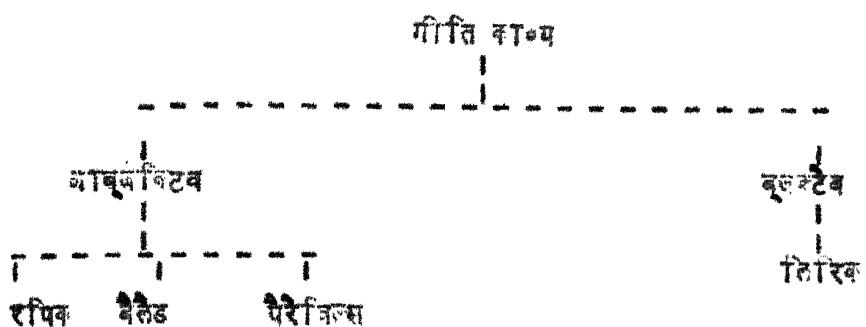
अंग्रेजी में गीतिकाव्य आत्माभिव्यक्तिवादी के अंतर्गत आता है। वीणा के साथ गाये जानेवाली गीतों का नाम लिरिक पड़ा। आरंभ से ही गीतिकाव्य के दो स्वरूप प्राप्त होते हैं - साहित्यिक रूप और दो संगीत तत्व। ग्राम गीतों में साहित्यिक रूप का प्रभाव पड़ा। गीतों में व्यक्तित्व, कल्पना, भावना आदि का प्रवेश होने लगा। एलिजबेथ युग में गीतिकाव्यों की रचना अधिक रूप में हुआ जिनमें धार्मिक, पौराणिक प्रणय सभी प्रकार की भावनायें मिलती हैं। शेक्सपीयर ने सच्चा प्रेम, अन्धा प्रेम , प्रेम से, वासना विहीन जीवन, प्रेम और समय, प्रेम का शोकगीत प्रेम का पक्षपात आदि अनेक गीतों का निर्माण किया। नाटकों में भी यत्र-तत्र सुंदर गीतों को जुड़ाया। जैसे शेक्सपीयर की "प्रेम का शोकगीत" में -

"मेरे काले कफन पर एक भी मधुर पुष्प न हो, कोई भी मित्र बधाई न दे। मेरा अकिंचन शव, अस्थियों के साथ वहाँ भी डाला जाय, वहाँ केवल सहस्रों उच्छ्वास मेरी रक्षा करें। मैं ऐसी जगह रहूँ कि - शोक मग्न सच्चा प्रेमी मेरा मजार तक न पा सके। इतना ही नहीं वह रो भी न सके। "

इस तरह गीतों में किसी न किसी रूप में भावों का आवेश है। कवि

अंतर्मुखी शैली के द्वारा अपनी व्यक्तिगत आंतरिक अनुभूति का प्रकाशन करने लगे। / संक्षिप्त रूप में किसी एक भावना का प्रतिपादन करते हैं। कवि स्वाभाविक और स्वच्छंद प्रवाह में भावावेश अधिक होता है। प्राय: सुकोमल, मधुर, मार्मिक भावनाओं की अभिव्यंजना ही इनमें होती है। कला की दृष्टि से गीतों ने एक नवीन धारा को जन्म दिया। यही व्यक्ति वाद के साथ ही नवीन चेतना से प्रभावित है। पश्चिम में गीतिकाव्य की परंपरा के अंतर्गत अनेक भावनाओं को लेकर गीतों की रचना हुई। धर्म, राष्ट्र, प्रणय, शोक, गौरव, उत्सव आदि अनेक आधार पर गीतों का सृजन हुआ। एक साथ इन गीतों में दर्शन, रहस्यमयता और तन्मयता का सामंजस्य मिल जाती हैं।

<u>छायावाद का गीतिकाव्य</u> :- पाश्चात्य गीतिकाव्य ने आधुनिक हिन्दी कविता को प्रभावित किया। द्विवेदी युग में गीतिकाव्य का पूर्ण विकास आदर्शवादिता के कारण न हो सका। छायावाद की स्वच्छंदता के साथ ही साथ गीतों को प्रधानता मिली। इसके कारण हिन्दी कवि गीतकार बन गया। रवींद्रनाथ ठाकुर ने पूर्व और पश्चिम का समन्वय करके ~~लोकसमक्~~लोकभाषा में रचना करने के कारण ही उनके गीतों में को सरसता मिली। छायावाद ने गीतिशैली के द्वारा ही अपनी स्वच्छंदता का मार्ग पर चलना आरंभ किया। छायावाद की कविता सच्ची भावसृष्टि का परिणाम है। जिसमें शब्द और अर्थ का उपमान और प्रतीक के समान, मधुर लय से योग रहता है। गीतों में सौंदर्यवर्णन , प्रणयनिवेदन, अतृप्ति, वेदनानुभूति, जीवन की मार्मिक व्यंजना मिलती है। छायावाद की गीतों में भी श्रृंगार, प्रेम, वियोग के अतिरिक्त देश और विश्व की भावनाओं की अभिव्यक्ति भी मिलती है। हिन्दी गीतिकाव्य का यह बहुमुखी प्रसार सर्वथा नवीन वस्तु है। छायावाद के गीतों में ग्रामगीतों की सी भाव प्रवणता न हो, किंतु वे सर्वोत्तम प्रकाशन थे। छायावाद का अधिकांश भाग गीतों में

विकरास गया। यह छायावाद का गीतिकाव्य पश्चिमी की देन है। छायावाद गीतिकाव्य मीरा से माधुर्य, एवं कबीर से रहस्यवाद को अपनाया।

<u>वर्ण्य विषय के आधार पर</u> :- गीतों का विभाजन भाषा, देश, अवसर, वर्ण्यविषय, और विधान पर किया गया है। परंतु सबसे महत्वपूर्ण विभाजन वर्ण्य-विषय-विधान के आधार पर हुआ है। इस आधार पर गीतों के भेद ये हैं। कि -

१. वीर गीत, २. करुणा गीत, ३. व्यंग्य गीत, ४. सामाजिक गीत, ५. उपालंभ गीत, ६. गीत-नाट्य, ७. रुपक गीत, ८. विचारात्मक गीत, ९. सम्बोधन गीत, १०. चतुर्दशपादी गीत, ११. अन्य प्रकार।

१. <u>वीर गीत</u>:- किसी वीर के चरित्र को आधार बनकार गाये जानेवाले गीत को "वीरगीत" कहते हैं। इस कोटि के गीतों में प्रायः गीत प्रबन्धोन्मुख रहते हैं। क्रमशः इनकी संगीतात्मकता क्षीण हो जाती है। और कथात्मकता बढती जाती है। इस कोटि के गीतों की भाषा प्रसाद और ओज गुण संपन्न होती है। गीतिकाव्य का एक विशेष स्वरूप इसमें दिखाई पडती है। जैसे - आल्हा, खण्ड

२. <u>करुण गीत</u>:- अंग्रेजी में इसके लिये "एलेजी" कहते हैं। वास्तव में करुण गीतों में छंद विधान के साथ साथ करुण भावना की अभिव्यक्ति भी नितांत आवश्यक होती है। प्रसाद का "आँसू" एक श्रेष्ट करुण गीत है।

३. <u>व्यंग्य गीत</u>:- जिनमें किसी वस्तु, स्थान या बात पर व्यंग्य का कटाक्ष किया गया हो, उसे "व्यंग्य" गीत कहते हैं। भारतेंदु-युग में इनकी रचना हिन्दी में अधिक हुई। आजकल की कविताओं में निराला की "कुकुरमुत्ता" एक सफल व्यंग्य गीत है।

उपालंभ गीतः- जिसमें किसी प्रकार का व्यंग्यपूर्ण उपालंभ हो उसे उपालंभ गीत कहते है। जैसे सूरदास की रचना "भ्रमर गीत"।

गीति-नाट्यः- अंग्रेजी में इसे "पोयटिक ड्रामा" कहते हैं। अंग्रेजी साहित्य में इसका बहुत महत्व है। इसे नाटकों की सर्वश्रेष्ठ कोटि मानते हैं। यह न काव्य नाटक है और न नाट्य-काव्य है। एक प्रकार का ऐसा रूपक है, जिसमें अभिनेयता के साथ साथ पद्यात्मकता भी होती है। भावातिरेकता, चित्रोपमता, अभिनेयता आदि आवश्यक अंग बन गये हैं। ये गीतिनाट्य भाषा में प्रेषणीयता का होना बड़ा आवश्यक है। भाषा स्पष्ट, ध्वन्यात्मक और सब प्रकार की चमत्कारोत्पादक ग्रंथियों से रहित होना है। नाटकीय सुसंबद्धता से संबंधित काव्यत्व की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। इस प्रकार यह नाटक गीतिकाव्य और नाट्य का मिश्रित रूप है। जैसे प्रसाद के "करुणालय"

रूपक गीतः- जिन गीतों में कवि लोग रूपकों के सहारे अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं उन्हें रूप गीत कहते हैं। छायावादी कवियों के अधिकांश गीत इसी कोटि में आते हैं।

विचारात्मक गीतः-जिन गीतों में अनुभूति के स्थान पर विचारात्मकता की प्रधानता रहती है, उन्हें "विचारात्मक गीत" कहते हैं। हिन्दी में ऐसी कोटि के गीत बहुत कम हैं।

संबोधन गीतः- जिनमें कवि किसी वस्तु को संबोधित करके अपनी भावात्मक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है, उसे संबोधन गीत कहते हैं। उस तरह के गीत अंग्रेजी एवं संस्कृत में भी हैं। जैसे "पंत की छाया", "कालिदास की मेघदूत"।

चतुर्दशपदी गीत:- अंग्रेजी में इसे "सोनट" कहते हैं। हिन्दी में इस प्रकार के गीत बहुत कम हैं।

अन्य प्रकार:- कई प्रकार के गीत भी और मिलते हैं, जैसे - चारण गीत, पत्रगीत, प्रणय गीत आदि। पर आजकल ये हिन्दी में बहुत कम हैं।

शैली भेद के आधार पर:- गीतिकाव्य में शैली भेद-प्रभेद भी हैं। जैसे-१.गीति कथा, २.नाटकीय गीत, ३.विशिष्ट गीत, ४. गाली, ५. यात्रा गीत, ६. कलात्मक काव्यगीत, ७.स्तोत्र गीत, ८. लोक गीत, एवं ९. कथात्मक लोक गीत।

१.गीतिकथा:- इसको अंग्रेजी में बैलेड कहते हैं। जो गीत होते हुये भी कथा की शृंखला जोड़ती है, उन्हें गीति कथा कहते हैं। उनमें प्रशंसा एवं दोषारोपण का गीत भी होता है

२. नाटकीय गीत:- नाटकीय गीत एक प्रकार के छंदोमय आत्मचरित होते हैं, जिन्हें किसी कथा के पात्र अलग-अलग आत्म-भावना के रूप में अभिव्यक्ति करते हैं।

३. विशिष्ट गीत:- जो वीर और विजय से भी हुई गीत है और मांगलिक अवसरों के लिये तो जोगीत बने हुये हैं, उन्हें विशिष्ट गीत कहते हैं।

४. गाली:- जो पूर्ण साहित्यिक रूप में मिलती है, जो मांगलिक अवसर का प्रेमगीत समझा जाता है , और लोकप्रिय नेताओं की हँसी हँसी उड़ाने के लिये जो गीत बनाये जाते हैं, उन्हें गाली कहते हैं।

५.यात्रागीत:- किसी धार्मिक यात्रा में चलनेवाले लोग जो गीत गाते हैं उन्हें यात्रागीत कहते हैं।

६.कलंकित काव्यगीत:- जिनमें मध्यकालीन वाद को ईश्वरवादी तथा आदर्शवादी बनाया गया है उन्हें कलंकित काव्य गीत कहते हैं। और इनमें चित्रकला के द्वारा रंगों के बदले केवल प्रकाश और छाया के द्वारा चित्रण किया जाता था। इसको अंग्रेजी में "क्लिमैटिक" कहते हैं।

७.स्तौत्रगीत:- जिनका संगीत कुछ विशेष शैली का स्तौत्रात्मक और आवेगपूर्ण होता था, जिनमें स्वर अत्यंत उदात्त ~~हैं~~, शैली अत्यंत विषम और छन्द भी विभिन्न होते थे, उन्हें स्तौत्र गीत कहते हैं।

८. शोकगीत:- इनको ~~अंग्रे~~ अंग्रेजी में "एलीसोड" कहते हैं। जो किसी सगे संबंधी के निधन पर काव्यात्मक शोकोद्वेग के रुप में विस्तृत-काव्य-रचना के रुप में करते हैं, उन्हें शोकगीत कहते हैं। पूर्वकाल/ में प्रत्येक गीतों के अंतर्गत रखा गया है। ~~अब~~ परंतु क्रमशः आजकल इन्हें साधारण लोक गीतों के समान शोकभरे गीत मात्र रह गये हैं।

९. कथात्मक लोकगीत:- जो गीत कथात्मक होते हैं, उन्हें कथात्मक लोकगीत कहते हैं। जैसे - रामायण, महाभारत, आदि इनमें पौराणिक वीरों की कथा, राजा के दरबारियों की कथायें होती हैं।

ये लोक गीत प्रायः दो प्रकार के होते हैं।

१.देशभक्ति संबंधी हैं, जिन्हे लोग मिलकर गाते हैं।

२. जो मौलिक ही लोगों में रहते हैं, जिन्हें लोग घूम घूम कर प्रसिद्ध करते हैं। आजकल के कवि जनता की भावना और जीवन का प्रतिनिधित्व करके गीत लिखते हैं। जैसे - भाट लोगों केगीत जो साहित्यिक रुप से भरा हुआ है और पाठ्य भी होते हैं।

<u>गीत छंद योजनाः</u>- गीत की छंद योजना में चार मुख्य बातें हैं। जैसे - अवसर, रस (भाव), वृति और राग।

अवसर का अर्थ यह है कि - किस ऋतु में, किस विशेष परिस्थिति में किस पात्र के द्वारा गीत गवाने का आयोजन किया गया है, वही "अवसर" है। गीतों के छंद प्रवृति एक टेक(बंधन) होती है। यह गीत के प्रारंभ में होती है। और निरंतर प्रत्येक पद के पश्चात् दुहराई जाती है। कोमल रसों और भावों को कोमल, सरस और सरल पदावली का एवं कठोर भावों अथवा कवि रसों में कर्कश, कर्णकटु एवं कठोर शब्दों का प्रयोग करना चाहिये। इससे उस भाव का रुपक खड़ा करने में सहायता मिले। जैसे- गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में अपनाया -

१. जब सीताजी उपवन में आती हैं-

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
मानहु मदन दुन्दुभि दीन्हीं । मनसा विश्व विजयकरिलीन्हीं।

२. जब धनुष टूटता है तब गोस्वामी जी की वाणी कड़क लेकर गरज उठती है

भरि भुवन घोर कठोर रव - रवि बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल - महि अहि कोल कूरम कल मले ।

<u>उपसंहारः</u>- इस प्रकार गीतिकाव्य के तत्व और लक्षणों को अपना करके प्रसाद की गीतियों या गीतिकाव्यों पर आरोपित करने यह स्पष्ट होता है कि प्रसाद ने अपने गीतिकाव्य को एक सीमित परिधि से निकालकर उन्मुक्त वातावरण में लाकर खड़ा कर दिया जिससे गीत प्रत्येक प्रकार की भावना के प्रकाशन का साधन बन सके।

: : : : : : : :

पंचम अध्याय

प्रसाद के नाटकों का संक्षिप्त विवेचन

-: पंचम अध्याय :-

प्रसाद के नाटकों का संक्षिप्त विवेचन

प्रसाद के नाटकों में केवल तेरह ही प्रमुख हैं। इनमें ८ ऐतिहासिक हैं, तीन पौराणिक हैं, और दो प्रतीकात्मक नाटक हैं। पुराण भी इतिहास ही हैं। इसलिये प्रसाद पुराण को इतिहास की दृष्टि से ही देखते थे। इसलिये "एक घूंट", कामना, को छोड़कर शेष सभी नाटक ऐतिहासिक ही हैं।

काल-क्रम से प्रसाद के नाटक दो भागों में विभक्त किये गये हैं। जैसे- प्रयोगकालीन नाटक(१९१०-१९१५) और उत्तरकालीन नाटक (१९२२-१९५२)।

प्रयोगकालीन नाटक हैं - सज्जन, प्रायश्चित्त, कल्याणी परिणय, करुणालय, और राज्यश्री।

सज्जन:- सज्जन नाटक की रचना सन् १९१०-११ में की गयी है। यह प्रसाद जी का प्रथम नाटक है औरसुखान्त है जो प्रयोगात्मक है। यह महाभारत की एक घटना पर आश्रित है। ~~यह महत्त्वपूर्ण~~ संस्कृत परंपरा के अनुसार इसमें नान्दी,(शिवस्तुति) प्रस्तावना, भरत-वाक्य आदि हैं। पारसी स्टेज का गद्य-पद्य साथ साथ चलता है। पद्य भाग अधिक है। पद्यों में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। स्वगत भी है। इसमें कुल पाँच दृश्य हैं।

इस नाटक में दुर्योधन का कुटिल स्वभाव एवं धर्मराज की उदारता स्पष्ट रूप

से दिखाये गये हैं। यह नाटकीय प्रतिभा की सूचना मिलती है। इस प्रकार प्रसाद जी ने चरित्र-चित्रण को द्वंद्वात्मक से भर दिया जो दुष्ट एवं सज्जन के प्रतीक हैं।

शैली का उदाहरणः-

दुर्योधन - नील सरोवर बीच

इन्दीवर अवली खिली।

कर्णः- मनु नरपति के गात

चक्रवर्ती विहरण करैं।

इस प्रकार यहाँ प्रकृति का वर्णन अपनाया गया है। पद्यमय संवाद भरित है।

२. प्रायश्चित्तः- यह सन् १९१२ में विरचित नाटक है। इसका कथानक भारत के मध्यकालीन इतिहास से संबंधित है।

संभवतः "प्रायश्चित्त" हिन्दी का पहला मौलिक दुःखान्त नाटक है। इसका नाट्य-विधान संस्कृत परंपरा से अलग है। इसमें एक ही अंक है। और पाश्चात्य विधान के साथ चला। यह छः दृश्यों का रूपक है। इसमें न नान्दी है, न प्रस्तावना, न पद्यमय वार्तालाप और न संगीत है। ऐसी छोटी सी एकांकी में चरित्र-विकास दिखाने का अवकाश नहीं है। क्यों कि यहाँ घटना-क्रम ही प्रमुख है। मुसलमान पात्रों द्वारा उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग कराया गया है। इस नाटक में थोड़ा-बहुत जीवन-दर्शन मिल जाता है। इसमें भरत-वाक्य भी लुप्त हो गया है। दिल्ली दरबार की भाषा उर्दू वातावरण से सृष्टि की गयी है। भाषा अशुद्ध है। इस नाटक में कवित्व कुछ भी नहीं है। यह नाटक अतीत प्रेम का निदर्शन है।

इस प्रकार प्रसाद जी को ऐतिहासिक घटनाओं का अपनाना ही अभीष्ट रहा है।

इसमें भाषा देश, काल एवं पात्रों के अनुसार परिवर्तित है।

३.कल्याणी परिणयः-

यह सन् १९१२ में विरचित नाटक है। यह प्रसाद जी का तीसरा नाटक है। इसमें एक ही अंक हैं। परंतु नौ दृश्यों का नाटक है। इस नाटक के आरंभ में प्रस्तावना तो नहीं है, परंतु नान्दी है। कुछ पात्रों के गीत बहुत सुंदर हैं। इनमें कुछ गीत चंद्र-गुप्त में अपनाया गया है। इस प्रकार इसका कथानक लगभग चंद्रगुप्त नाटक के कथानक सा है। परंतु यह तो संक्षिप्त रूप में है। इस नाटक के अंत में नायक-नायिका के परिणय के अंत में भरत-वाक्य की शैली का एक मंगलगान है। संवाद पद्य मय हैं। इस प्रकार इस नाटक की कथानक का आधार एक ही घटना है। इसमें कई स्थलों पर स्वगत है।

इसकी कथानक में न तो नीटकीयता हैऔर चरित्रों का विकास , नहीं ~~fx~~ दिखाया जा सका है। दो तीन प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषतायें अवश्य सामने लाई गई हैं। परंतु तथाविस्तार के ~~अवसर~~ ~~का~~ अभाव के कारण इनका भी पूरा चरित्र सामने नहीं आ पाया। इसमें सभी पात्र धीरोदात्त हैं। इसमें नाटककारने प्राचीन परंपरा ~~शैली~~ को निभाने की चेष्टा की है।

४. करुणालय:-

यह प्रसादजी का चौथा नाटक है। इसका रचनाकाल सन् १९१३ है। इसे एक प्रकार का गीतिनाट्य कहना ही उचित है। इसमें हरिश्चंद्र-संबंधी पौराणिक कथा है जिसका संकेत "ब्रह्मर्षि" में हुआ है। यह नाटक पाँच दृश्यों में समाप्त होता है।

इसमें पुरुष पात्र नौ और स्त्री पात्र दो हैं। प्रसाद जी का यह दृश्य काव्य गीति-नाट्य के ढंग पर लिखा गया है। इसलिये ही इसमें सारा कथानक लगभग गीतों से ही भर गया है।

इस नाटक में नान्दीपाठ, प्रस्तावना, भरत वाक्य, आदि नाटक लक्षणों का लोप हो गया। कुछ पात्रों के चरित्र विशद हैं और कुछ दार्शनिक मत भी आये हैं।

समीक्षा:- इसमें रोहिताश्व की एक प्रार्थना है जो सारी कृति में श्रेष्ठ है और अनुभूति-प्रधान है। इसमें बौद्ध-धर्म की अहिंसा का पर्याप्त रूप से इसमें विद्यमान है। इस रूपक में विश्वकल्याण की भावना व्याप्त है। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों पर प्रकाश डाला गया है। पात्रों के आदर्श भिन्न होने पर भी सिद्धांत का नैतिक आधार है। इसमें नाटकीय अंश कम है, और कहानी तत्व-प्रधान है। चरित्र-चित्रण का विशेष आग्रह नहीं है। कथा-प्रवाह में कोई पात्र अपना व्यक्तित्व उभार नहीं पाता। ईन्द्र के आत्मवाद की व्याख्या करने की चेष्टा की योजना की गई है। यह एक प्रकार से अनावश्यक ही है। इस प्रकार प्रसादजी ने अधिकतर नाटकों की ऐतिहासिक कथावस्तु अपनायी है।

१९२२-३२ कालावधि में प्रसादजी ने जो नाटक लिखे हैं, वे नये रूप में अवतरित हुये हैं। प्रसादजी ने अपने सभी नाटकों में ऐतिहासिक कथा को ही दिग्दर्शन करके लोगों को वर्तमान पतनीय दशा से ऊपर उठाने के लिये प्रेरित करना ही उनका उद्देश्य रहा है।

प्रसाद जी के इस उत्तर कालीन युग में जो नाटक लिखे गये हैं। उनमें १

नाटक लोकप्रसिद्ध बन गये हैं। वे इस प्रकार हैं - स्कंद गुप्त, चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री, विशाखा, जनमेजय का नागयज्ञ, एक घूंट और कामना।

स्कंदगुप्तः-

यह नाटक सन् १९२३-२४ कालावधि में लिखा गया है। यह प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ नाटक-कृति है। यह पाँच अंकों में प्रस्तुत ऐतिहासिक नाटक है। इसमें पाश्चात्य और भारतीय पद्धतियों का सुंदर और सफल समन्वय हुआ है। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार इसमें कार्य और संघर्ष तथा भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार रस, नायक और वस्तु का सफल निर्वाह इस नाटक की अपनी विशेषता है। संपूर्ण घटना-चक्र इतिहास द्वारा अनुमोदित है। नाटक की सभी कार्य-अवस्थाओं का स्पष्ट बोध होता है। राजनीतिक एवं शृंगारिक कथाओं का विकास एक-साथ होता चलता है। अन्य नाटकों की तरह इसमें भी दुष्ट, साधारण और आदर्श पात्र आये हैं। पुरुष पात्रों में कर्म और शौर्य तथा स्त्री पात्रों में सेवा और त्याग दिखाकर मर्यादा की स्थापना की गई है। इस नाटक की प्रधानता वीर रस की है परंतु अंतिम दृश्य में शान्तरस ने व्याघात उपस्थित किया है।

इस नाटक में प्रासंगिक कथावस्तु नहीं है। एक ही अविच्छिन्न कथा, एक ही भावना, एक ही उद्देश्य होने के कारण इसका प्रभाव अधिक है। कथानक बहुत स्पष्ट है। वस्तु का विस्तार कुछ अधिक है। कथानक में पात्रों की संख्या अधिक है। कुछ पात्र निरर्थक भी हैं, जिन्हें हटाकर कथा को और संगठित किया जा सकता था। चरित्र-चित्रण , कल्पना, कला और भाषा-शैली के कारण यह प्रसाद के नाटकों में

सर्वोत्तम माना जाता है। इसमें आर्य-साम्राज्य के पतन-काल का चित्र है। भाव-विदग्ध शैली सफल नाटकीय परिणति चरित्रों का बड़ा विस्तृत जीवन है। कथावस्तु के संगठन में संस्कृत की शास्त्री पद्धति का अनुसरण किया गया है।

चंद्रगुप्त:- प्रसाद जी की अनेक त्रुटियों के बावजूद यह नाटक प्रसादजी के सभी नाटकों में सर्वोत्तम नाटक है। क्यों कि - तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक अवस्थाओं का सजीव वर्णन किया गया है। इसकी रचना सन् १९२८ में हुई। यह मौर्यकालीन ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक में २५ वर्षों का इतिहास लिया गया है। इसकी कथा चार अंकों में विभाजित है। इसमें अनेक दृश्य निरर्थक हैं। कथा का विस्तार बहुत अधिक है। कथानक तर्क शिथिल है। पात्रों की संख्या भी बहुत अधिक है। वस्तु-योजना शिथिल है। इसमें वीर रस की प्रधानता है। और चाणक्य तथा चंद्रगुप्त की महत्ता में सन्तुलन होने से नायक कौन है? यह प्रश्न उठता है? राष्ट्रीय भावना संकुचित है। चाणक्य के चरित्र को छोडकर अन्य सभी पात्रों के चरित्रों में न तो अंतर्द्वंद्व है न विकास और न वैचित्र्य। नायिका की अनिश्चितता खटकती है।

अभिनेयता की दृष्टि से यह अधिक असफल है। इसमें आधिकारिक कथा के अतिरिक्त कुछ प्रासंगिक कथायें भी हैं। यह वीर रस प्रधान नाटक होने पर भी शृंगार रस का योग निरंतर रहता है। प्रसाद जी का प्रेम-वर्णन संयत और उदात्त होता है। वीररस के लिये ओजे और दर्पपूर्ण संवाद और शृंगार रस के लिये मधुरता आदि गुण, भाषा और भाव-व्यंजना में भर गये हैं। इस नाटक में तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों का पर्याप्त प्रकाश भी डाला गया है।

अजातशत्रु:-

यह नाटक प्रसाद जी ने सन् १९२२ में लिखा है। इसमें तत्कालीन संघ राज्य मगध और कोशल के और चंद्रगुप्त के परस्पर युद्ध तथा यूनानियों के भारत पर आक्रमण की कथा है। इस तरह यह ए/ ऐतिहासिक नाटक है।

इस नाटक की कथावस्तु जटिल और बोझिल हो गई है। यह तीन अंकों का ऐतिहासिक नाटक है। इसके आरंभ में प्राक्कथन है। इस नाटक का आधार न कि केवल ऐतिहासिक परंतु जातक कथायें और पुराण भी है। यह नाटक न सुखान्त है और न दुःखान्त। यह प्रसादान्त है। घटना और चरित्रांकन की एक-सी प्रधानता है। कार्य की अवस्थायें पाश्चात्य नाट्य-शैली के अनुसार है। स्त्री पात्र अधिक सबल और प्रभावशाली है। वीररस की प्रधानता है। इसके बाद शांतरस एवं शृंगार रस का स्थान है।

से नाटक में करुणावाद की व्याख्या की गई है। भाषा और शैली सुंदर है। इसमें प्रसादजी ने सारी ज्ञात ऐतिहासिक सामग्री को ठूँसने की चेष्टा की है। इससे कथावस्तु जटिल हो गई है। इतिहास प्रधान हो गया है और साहित्य-गौण। इसमें कई कथायें एक साथ चलती हैं। पतित पात्रों का हृदय-परिवर्तन अस्वाभाविक ढंग से हुआ है। इससे नाटकीयता शिथिल हो गयी है। पात्रों की संख्या अधिक होने से अनेक चरित्रों को पूरा स्थान नहीं मिल सका। प्रायः पात्र स्थिर है, पर पात्र गतिशील नहीं है। चरित्रों का विकास बाह्य द्वंद्व से होता है। प्रेम-तत्त्व आकर्षक है, परंतु उच्च स्थान में नहीं है। दार्शनिक गंभीर वातावरण है और गीत लंबे लंबे भी हैं। ऐसा होने पर भी गीतों में गंभीरता, सौंदर्य और छायावाद निहित हैं।

ध्रुवस्वामिनी:-

इस नाटक की रचना सन् १९३३ में हुई। यह प्रसादजी का अंतिम नाटक है। यह ऐतिहासिक होते हुये भी चमत्कार-प्रधान, समस्या-मूलक एवं सभी नाटकों से निराला है। इसमें तीन अंक हैं जिनमें एक एक ही दृश्य है। हर एक अंक का अंतिम भाग अत्यंत प्रभावपूर्ण है। इस नाटक की प्रधान समस्या है नारी का शोषण । इसका समाधान भी किया गया है। गौण रूप से राजा और प्रजा के संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रसादजी के सभी नाटकों में यह एक ऐसा नाटक है जो सरलता से रंगमंच पर खेला जाता है। और यही एक नाटक है जिसमें रंगमंचीय भूमि का हर एक दृश्य के लिये उपस्थित है। इस नाटक में अन्य नाटकों की अपेक्षा पात्र-संख्या कम है। कथोपकथन स्वाभाविक, सीधे, आवेशपूर्ण और छोटे तथा व्यावहारिक है। कहीं कहीं धर्म के तर्क-वितर्क, बड़ी सुंदर व्यंजनायें, मिलती हैं। इसकी नवीन रचना पद्धति इसकी एक विशेषता है। चरित्र-चित्रण, वस्तु विन्यास, कथोपकथन, संकेत सूचना आदि सभी का नया रूप उपस्थित किया गया है। नाटक का प्रधान रस वीर रस है तथापि शृंगार रस इसके सहायक रूप में दिखाई गई है।

राज्यश्री:-

यह नाटक प्रसादजी से सन् १९१५ में लिखा गया है। प्रसादजी का प्रथम ऐतिहासिक रूपक है। इसमें केवल चार ही अंक हैं। यह नाटक दो संस्करणों में छप गया है। प्रथम संस्करण में तो घटनाओं में संघर्ष ही संघर्ष है। नांदी पाठ और अंत में प्रशस्ति-वाक्य भी हैं। कथोपकथन भी पद्य रूप में मिलता है। परंतु दूसरे संस्करण में अधिक

अभिव्यक्ति और कथानक, चरित्र-चित्रण तथा कथोपकथन की दृष्टि से अधिक प्रौढ़ और सबल है। इसमें नांदी नहीं है। कथा में कोई नवीनता नहीं है। प्राक्कथन में"ऐति-हासिक पक्ष का प्रकाश है।

यह नाटक घटना-प्रधान है। चरित्र-चित्रण अविकसित रह गया है। वस्तु संकलन में नाटकीयता का ध्यान नहीं रखा गया। अधिक पात्रों में व्यक्तित्व नहीं है इस नाटक के अंत में भरत वाक्य है। हास्य का रूप विशद है।

<u>विशाख</u> :-

इसकी रचना सन् १९२१ में हुई है। यह प्रसाद का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है। यह नाटक कल्हण कृत राजतरंगिणी की एक घटना पर अवलंबित है। कथा-क्रम वही है। इसमें प्रेम-कथा है। ऐतिहासिक तत्व कम है। आर्य और अनार्यों का संघर्ष प्रसंग रूप में लाया गया है। इस नाटक की कथावस्तु सरल और सरस तो है, परंतु नाटकीय कुशलता का अभाव है। कथानक बिखरा-बिखरा है। इसकी ऐति-हासिक कथा कल्पना के द्वारा विस्तारित की गयी है।

इस नाटक में पारसी थियेटरों का प्रभाव स्पष्ट है। इसमें गीतों के अतिरिक्त नृत्य की योजना भी की गई है। प्रेम की अभिव्यक्ति में गंभीरता नहीं आ पायी है। पात्रों संख्या अधिक नहीं है। इस कारण से चरित्र-चित्रण अपेक्षाकृत सुंदर हुआ है। समय के अनुकूल कुछ पात्रों की कल्पना की गयी है। इसमें नान्दी और प्रस्तावना नहीं है। भाषा कथावस्तु से सरल है। भरतवाक्य भी है।

जनमेजय का नागयज्ञ:-

यह एक पौराणिक कथा पर आधारित है, जो सन् १९२१ में रचा गया है। यह नाटक तीन अंकों में विभक्त है। यह साधारण नाटक है। इसमें ब्राह्मण और क्षत्रियों के तत्कालीन संघर्ष को उभारकर रखा गया है। कथा-वस्तु और चरित्र-चित्रण शिथिल और अस्पष्ट है। पात्रों की संख्या अधिक है। इसमें नायक को पूर्ण लक्षणों के साथ नहीं दिखाया गया। कई दृश्य प्रभावहीन ही हो गये हैं।

इस नाटक में कुछ स्त्री-पुरुषों के काल्पनिक पात्र भी हैं। प्रासंगिक रूप में वेदव्यास और दामिनी की कथा चलती है। पुराण के बिना ब्राह्मण ग्रंथ भी इसके आधार हैं। ऐसे होते हुये भी सांस्कृतिक रूप में है। कथावस्तु दुरूह है। पात्रों की संख्या अधिक होने से चरित्र चित्रण का अवकाश मिलना कठिन है। इस नाटक में गीत कुछ हलके हैं और गद्य गीत भी हैं।

कामना:-

यह नाटक प्रसाद जी से सन् १९२३-२४ में विरचित है। यह अन्य नाटकों की तरह ऐतिहासिक नहीं है। यह सबसे भिन्न है। यह एक प्रकार का आद्यांतरिक नाटक है जिसे भाव-रूपक भी कहा जा सकता है। इसमें मानव समाज की आदिम वृत्तियों का विकास दिखाया गया है। इस नाटक में विषय है - विलास, स्वार्थ भौतिकता, राजनीति और संघर्ष का दुष्परिणाम तथा संतोष से मंगल विधान। इसमें तीन अंक हैं। चरित्र विकास की गुंजाइश कहीं नहीं है। सभी पात्र किन्हीं विशिष्ट मनोभावों के सजीव रूप हैं। यह एक विध्वंसात्मक रचना है।

यह नाटक नयी सभ्यता का प्रतीक है। इसमें आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य किया गया है। इसकी विचार-धारा महत्वपूर्ण है। और आसुरी सभ्यता के विरुद्ध है। यह नाटक कल्पना प्रधान है। भाषा एवं भाव काव्य पूर्ण है। नाटक का स्वर नीतिवादी है। इसमें नवीन संस्कृति की विविध दशाओं और उस समय की दुःखावस्थाओं का चित्रण है। भाषा एवं भाव अधिक कवित्वमय है। गीत कोमल हैं। इस प्रकार उस समय की देशी परिस्थितियों को और सामाजिक परिस्थितियों को दृष्टि में रख कर इस नाटक की रचना की गयी है।

<u>एक घूंट</u> :-

यह नाटक प्रसाद कृत एकांकी है जो संभवतः हिन्दी का प्रथम आधुनिक एकांकी नाटक है। और सिद्धांत वादी नाटक है। इसकी रचना सन् १९२९ में की गयी है। इसमें कथा का अभाव है। यत्र-तत्र प्रसाद जी की जीवन संबंधी विचार-धारा भी निहित है। इसमें एक ही दृश्य है।

इस नाटक में प्रसाद की आनंदवादी विचार-धारा के दर्शन होते हैं। आनंदवाद का आधार है - ज्ञान भाव, और कर्म का संतुलन। इसे नाटकीय निबन्ध कहा गया है। इसमें व्यक्ति प्रधान शैली, एक-सूत्रता और तर्क-वितर्क का क्रमिक विकास मिलता है। संवादों में सजीवता और सरलता का अभाव है। प्रसंग और विषय एक है। यह सिद्धांतवादी नाटक होने के कारण रंगमंच के योग्य नहीं है। इसके पात्र कठपुतली मात्र हैं। उनके भीतर विचार तो नहीं है और चरित्र भी नहीं। रचना तो शिथिल है।

निष्कर्ष:-

इस प्रकार प्रसादजी के सभी नाटकों के परिशीलन करने से यह ज्ञात होता है कि - प्रसादजी की कामना और एक घूँट जो प्रतीकात्मक नाटक हैं, इनके सिवा शेष सभी नाटक ऐतिहासिक हैं। इन ऐतिहासिक नाटकों में नाटकों के वातावरण से प्रसादजी का मन ऊब जाता है, उस समय कल्पना प्रसूत वातावरण की अधिकता होती है। इनसे अतिरिक्त यह भी स्पष्ट हो जाता है कि - आजकल की जनता के व्यक्तिगत के बिना उनकी मानसिक वृत्तियों का वर्णन भी सजीव चित्रण किया है।

इस प्रकार प्रसादजी ने नाटककार और कवि की अपेक्षा दार्शनिक के रूप में भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान को अपनाया है।

: : : : : : : : : : : :

षष्ठ अध्याय

नाटकों में गीति-योजना का ऐतिहासिक क्रम

-: ष ष्ठ अ ध्या य :-

नाटकों में गीत-योजना का ऐतिहासिक क्रम

प्रसाद काव्यानंद को ब्रह्मानंद सहोदर माननेवाले भारतीय मनीषी हैं। इनकी सभी कला-कृतियों में काव्य का सुंदर समावेश करना उनका स्वभाव है। इनमें नृत्य और संगीत मनोरंजन के प्रधान साधन बन गये हैं। अनुकरण तथा जन-रंजन के लिये नाटकों में गीतों का समावेश किया है। इस प्रकार प्राचीन काल के नाटक सुंदर कविता के अंश बने हैं। परंतु क्रमशः उसमें कुछ परिवर्तन आया है। नाटक की कथा-वस्तु पद्य रूप में रखी गयी है। हिन्दी नाटक रचना में तल्लीन होनेवाले साहित्य सेवियों ने संस्कृत नाटकों के अनुकरण में प्रारंभ से ही कविता को अपनाया। हिन्दी के सब नाटकों में जब-तब गीत गाये गये हैं। नाटककार भी धीरे धीरे स्वाभाविकता का महत्व समझने लगे।

प्रसाद जी की आरंभिक रचनाओं में कविताओं की संख्या अधिक थी। परंतु बाद में एक प्रकार के कुशल कवि होने के कारण इनका अभाव रहा है। पात्रों की दृष्टि से स्वाभाविकता को अपनाने के लिये यत्र-तत्र गीतों का प्रवेश किया गया है। लगभग सभी नाटकों में दर्शन कविता या संगीत प्रेमी पात्र अवश्य होते हैं। इन पात्रोंके गीतों के द्वारा आवश्यक वातावरण की सृष्टि करते हैं। इसके द्वारा नाटक में सहजता का उत्पन्न होना असंभव नहीं है।

इस प्रकार नाटकों के गीतों की रचना इतनी लंबी अवधि के भीतर हुई है। इस दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में सज्जन प्र प्रथम नाटक है और ध्रुवस्वामिनी अंतिम सब

नाटक है। प्रसाद के साहित्य जीवन की दीर्घ साधना इनमें छिपी हुई है। गीतों में कवि की भावुकता निहित है। इन गीतों के द्वारा ही अपनी आंतरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की गयी है। प्रसाद के नाटकों के नारी पात्र तथा गीतों में भावुकता अधिक है। इस प्रकार भावुक कवि का हृदय मचलता है और इसको स्वीकार करने में कवि एक प्रकार की संतुष्टि का अनुभव करते हैं।

इस तरह भावुकता के प्रकाशन के लिये ही कवि ने नाटकों में गीतों का समावेश किया है। इस प्रकार उन उन स्थानों की परिस्थिति के अनुसार पात्रगीत गाते हैं। कुछ कुछ पात्रों में गाना ही प्रियतम वस्तु बन गया है। गीतों की रचना मनोवृत्ति के प्रकाशन के लिये भी की जाती है। विषाद से पीड़ित पात्र अपनी वेदना और अनुभूति को गीतों के द्वारा ही व्यक्त करते हैं। संगीत तत्व की दृष्टि से भी गीतों का महत्व है। इस तरह गीत एक ओर पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिये सहायक होते हैं दूसरी ओर प्रेक्षक के लिये मनोरंजक होते हैं।

संस्कृत नाटक प्रायः पद्य में ही लिखे जाते थे। इनमें गीतों को प्रमुख स्थान दिया गया है। धीरे-धीरे नाट्य-साहित्य के अभाव में उनके स्वरूप में परिवर्तन आ गया। हिन्दी नाटकों में भी यत्र-तत्र छोटे छोटे पद्य भी जोड़ दिये गये। यह सभी प्रयास प्रमुखतः जनता के मनोरंजन के लिये ही है। परंतु यहाँ प्रसाद ने नाटक को साहित्यिक धरातल पर रख दिया। इस तरह प्रसाद ने अपने प्रारंभिक नाटकों में

गीत-योजना के [illegible] बहुत [illegible] तुलना

बहुत कम ही गीत आरंभिक नाटकों में दीख पड़ते हैं। आगे बढ़ते हुये प्रसाद ने कुछ पद्य- खण्डों को जो अस्वाभाविक-सा दीख पड़ते हैं, उनका परित्याग किया। इस प्रकार क्रमशः प्रसाद ने गीत को नाटक का एक अंग ही बना दिया।

गीत-योजनाः- कथावस्तु जहाँ असंबद्ध हो, चरित्र-चित्रण जहाँ अस्पष्ट हो और संवाद जहाँ चमत्कार रहित हो, वहाँ गीत प्राण फूंक पाते हैं। और कवि का मन जब कथा के संदर्भ से ऊब उठता है उस समय वे दुर्बल स्थलों पर चित्ताकर्षक गीत की योजना कर देता है। कभी कभी पृष्ठभूमि के रूप में भी होती है। यत्र-तत्र कथावस्तु के विकास के लिये भी इनकी प्रस्तावना होती है।

नाटकों में गीतों का उपयोगः-

नाटकों में गीतों की योजना अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार गीतों की योजना अत्यंत उपयोगी है जैसे-

१.परिस्थिति जन्य अथवा घटना-मूलक नीरसता का निराकरण के संदर्भ में।

२. भूतकाल की घटनाओं के वर्णन में।

३. नाटकीय कथावस्तु की एक सूत्रता बनाने के लिये।

४. कथावस्तु के विस्तार के लिये ।

५. परिस्थिति के अनुकूल वातावरण-निर्माण करने के लिये।

६. पात्रों के मानसिक विश्लेषण के लिये ।

७. साहित्यक अभिवृद्धि के लिये।

८. पात्र परिचय के लिये।

९. अभिनेयता में सहायता के लिये ।

१०. कवि-मनो-दशा को व्यक्त करने के लिये ।

प्रमुखतः इन गीतों को चार भागों में विभाजित किया जाता है। जैसे -

१. नर्तकियों के गीत, २. एकांत गीत, ३. नेपथ्य गीत और ४. समवेत स्वर गीत।

१. नर्तकियों के गीतः- प्रसाद के नाटकों में नर्तकियों के गीत यत्र-तत्र अर्थात् विलास-कानन में या मनोरंजन के लिये होते हैं। दूसरों की प्रेरणा से गाये जाने के कारण इन गीतों में स्वाभाविकता नहीं होती।

२. एकांत गीतः- ऐसे गीत विशेष मानसिक स्थिति या भावावेश में हृदय के उद्‌गार व्यक्त करने के लिये गाये जाते हैं।

३. नेपथ्य गीत :-गीत विषय के अनुकूल मनोभावों के उत्तेजक होते हैं। जैसे- चंद्रगुप्त नाटक में राक्षस के मन में सहसा शंका उठती है कि - सुवासिनी की उपेक्षा का कारण कहीं चाणक्य के प्रति उसका आकर्षण तो नहीं तभी नेपथ्य गीत शुरु होता है, जो शंका की मानों पुष्टि कर देता है।

४. समवेत स्वर गीतः- किसी के मन में सोती हुई राष्ट्रीयता की भावना को जागृत और उत्तेजित करने के लिये ऐसे गीत गाये जाते हैं।

इनके अतिरिक्त गीतों में प्रणय, देश-प्रेम, दर्शन आदि कई प्रकार की भावनाओं को ही समेट करके कई प्रकार के गीतों का निर्माण किया गया है। जो अभी तक किसी नाटककार से नहीं किया गया है।

: : : : : : : : : : : :

सप्तम अध्याय

गीतों का विश्लेषण

-: स प्त म   अ ध्या य :-

गीतों का विश्लेषण

उपर्युक्त विवरणोंसे यह स्पष्ट है कि गीतों के बिना नाटक ऐसे होते हैं जैसे - "रस बिना काव्य", "गुरु बिना शिष्य" तथा "बिना कांति छाया"।

इस प्रकार नाटकों में प्रयुक्त गीतों के क्रमिक विकास :-

स्कंदगुप्त:-

न छोडना उस अतीत स्मृति के
खिंचे हुये बीन तार कोकिल
करुण रागिनी तडप उठेगी
सुनाना ऐसी पुकार कोकिल।

"स्कन्दगुप्त का प्रथम गीत जो कुमारगुप्त की सभा में नर्तकियों द्वारा गया जाता है। इसमें प्रसादजी परिस्थिति और वातावरण का परिचय देकर नाटक को स्वाभाविकता प्रदान करते हैं। इसमें मगध के गत वैभव की स्मृति की टीस है। जब वहाँ आनंद भैरवी सुनाई पडती है थी, मधु की फुहार थी; वहाँ पर मधवी निशा थी। लेकिन अब सब सूना हो गया। वह वासंती बहार नहीं रह गई।

उपर्युक्त गीत करुण एवं कोमल गीत की योजना करके दृश्य का वर्णन करते हैं। ए शान्त निस्तब्ध और कोमल करुणाजनक वातावरण में निर्मित है। यह इस प्रकार आगे आनेवाली घटनाओं के लिये एक प्रकार की पीठिका बन गया है।

संसृति के वे सुंदरतम क्षण यों ही भूल नहीं जाना,
वह उच्छृंखलता थी अपनी .. कहकर मन मत बहलाना,
....
मिलन विपतिम तट मधु जलनिधि में मृदु हिलकोर उठा जाना।

इसमें भूतकाल की घटनाओं की ओर संकेत हैं। इससे मातृगुप्त और मलिनी की पूर्व-प्रणय कथा का संकेत मिलता है। परंतु यह नाटक गद्य रूप में नहीं उल्लिखित है। और इससे यह भी निहित है कि - वह कथावस्तु के विस्तार में सहायक बन गया है। इससे प्रसादजी बहुत प्रसिद्ध भावुक कवि बन गये हैं। इस प्रकार नाटक की अस्पष्ट कथा भी स्पष्ट की जाती है।

उतारोगे अब कब भू-भार
बार बार क्यों रखा था लूँगा मैं अवतार
....
सावधान हो अब तुम जानो मैं तो चुका पुकार।

इस गीत में मुद्गल एवं मातृगुप्त दोनों मिलकर गाते हैं। असहाय अवस्था में प्रार्थना के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं । इस प्रकार सोचकर भगवान से विनती करते हैं।

संसार दुःख का पारावार है। प्रलय ~~मच~~ मचा है। मानवता में राक्षसत्व भर गया है। हे भगवान् क्या यह हा- हा कार तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँचता है? कब अवतार लोगे? मातृगुप्त के कवि रूप में प्रसाद ने समस्त भावुकता को निहित कर दिया है। इस गीत के द्वारा कवि ने आत्म प्रकाशन किया है।

भरा नैनें में मन में रूप,

किसी छलिया का अमल अनूप,

....

खेलता जैसे छाया धूप

भरा नैनों में मन में रूप।

यह गीत देवा सेना से गाया गया है जो गीत देवसेना के भावी जीवन की सूचना देता है। देवसेना मालवी राजा बंधु वर्म की बहिन है। देवसेना संगीत को अपनी प्राण सहचरी मानती है। वह बिना गाये नहीं रह सकती। युद्ध के समय में भी वह गाना चाहती है। क्यों कि - वह यह समझती है " कि - क्या मालूम प्रिय गान फिर गाने को मिले या नहीं? जिस छलिया का रूप उसके नयनों में , मन में भर गया है, वह उस दृश्य के अंत में आता है। उसी की छवि सर्वत्र समायी है, और मेरी आँखों में मद बनकर भरी है। वह मेरा जीवन प्रांगण, धूप-छाँह खेलता फिरता है। गीत में यौवन का उल्लास फिरता है।

उपर्युक्त गीत में रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। वह छलिया जल, थल, मारुत, व्योम सब ओर छाया हुआ है। उसकी खोजकर देवसेना पागल-सी बन गयी है और प्रेम विभोर हो गयी है।

इस प्रकार कवि ने अपनी व्यावहारिक प्रवृत्तियों के कारण पूर्ण रहस्य-वादी भावनाओं को गीतों में नहीं प्रतिपादन किया। यत्र-तत्र रहस्यमय प्रवृत्ति झलकती है।

घने प्रेम - तरु तले

बैठ छाँह लो भव-आतप से तापित और जले।

मिले स्नेह से गले

घने प्रेम तरु तले ।

इस गीत में देवसेना सामान्य अनुभूति के स्तर से बहुत ऊँचे उठकर रहस्यात्मक अनुभूति के लोक में पहुँची हुई है। देवसेना अपनी सखी विजया को सीख देती है कि इस घने प्रेम तरु-तले, श्रद्धा-सरिता-कूल पर स्नेह से गले मिलो। जो अविश्वास तुम करने जा रही हो, उसे हृदय से बाहर कर दो। छवि-रस-माधुरी पीकर जीवन-बेलि सींच लो और सुख से जियो। ये सभी कल्पना से ही प्राप्त होंगे।

इस प्रकार इसमें देवसेना ने प्रेम की जीवन शक्ति का चित्र प्रस्तुत किया है। विजया भी कभी कभी अपने परिवर्तन शील रूप में गाने लगती है। परंतु इस स्थिति में देवसेना के गाने पर हँसने लगती है, जो व्यंग्य को सूचित करती है। इस तरह इस नाटक में देवसेना ही गीतों का गाने का भार वहन करती है। इस प्रकार देवसेना के गीत नैसर्गिक संगीत से अनुप्राण है। इस प्रकार पारिजात के परिचय के मिस वह अप्रस्तुत रूप से अपने ही को व्यक्त करती है। संगीत की प्रभविष्णुता और उसका मनोहर स्वरूप अन्य रूपों में देखती है जो प्रकृति में भी उसकी कल्पना है।

उमड़कर चली भिगोने आज

....

बिखरते इन आँखों की ओर ।

इस गीत में विजया अपने प्रिय की याद में आती है जो विरह-वेदना की

सूचित है। विजया जो मलव राजा की कन्या है, स्कंदगुप्त को प्रथम दृष्टि में ही अपने हृदय को समर्पित है। परंतु जब विजया यह समझती है कि – उसका विवाह भट्टार्क से होगा उस समय उसकी मनोव्यथा का इस प्रकार विरह गीत में चित्रित किया गया है।

जैसे – सोच रही है कि – वह अपने हृदयेश्वर के पास नहीं जा सकती। और अपनी नयन-जल-धारा तुम्हारे आँचल को भिगोना चाहती है। आँखों की लालिमा तुम्हारे हृदय के अंतरतम में जाना चाहती है। अंत में विरक्त बन कर गाती है कि – यह सारा विश्व माया जाल ही है। सारे जीवों को इसमें लय होना ही है। क्यों सोचना है।

इसमें विजया अपनी चंचल प्रवृत्ति के कारण पागलों की भाँति गीत नहीं गा पाती। मन मानसिक व्यथा से भर गयी है। एक बौद्धिकता की छाया दिखाई देती है।

> सब जीवन बीता जाता है।
>
> धूप छाँह के खेल सदृश
>
> ....
>
> जो कुछ हमको आता है।

यह एक नेपथ्यगान है। युद्ध, श्मशान सभी स्थलों पर देवसेना के प्राण मुखर हो उठते हैं। वह तो केवल अपनी स्वाभाविक वृत्तियों के अनुसार गाती है। परंतु प्रसाद जीने इसमें जीवन दर्शन की स्थापना की है। जब देवसेना श्मशान में ठीक उसी समय पर आयी हुई विजया के पूछने पर कहती है कि – "श्मशान" माने कुछ भी नहीं है। जीवन की नश्वरता के साथ ही सर्वात्मा के उत्थान का सुंदर

स्थल है। ऐसे अवसर पर नेपथ्य से गान गाया जा रहा है।

धूप-छाँह के खेल की तरह जीवन अबाध गति से चला जा रहा है। हमें भविष्य-रथ में लाकर न जाने कहाँ छिप जाता। प्रतिक्षण भागता जाता है। तुषार कण में नवीनता जिस प्रकार होती है, उसी प्रकार मुझे भी भविष्य के रथ में ले जाओ। लहर, मेघ, बिजली, सभी से जीवन का नाता है। जीवन क्षणभंगुर है।

माझी। साहस है खेलोगे ॥
जर्जर तरी भरी पथिकों से
झड़ में क्या खेलोगे?
... ...
ये झटके झेलोगे? माझी ..

उक्त गीत देवसेना के प्रति सखियों की छेड़-छाड़ है। बेचारी का स्कंदगुप्त के प्रति प्रेम उन पर उघर गया है और वे उसे बना रही हैं। प्रेम की कठिनाइयों का वर्णन करते हुये पूछती है कि - क्या इस बीहड़ बेला में तुम अपनी जर्जर तरी खे लोगी? प्रेम के कांटों से भरा मार्ग अनायास ही पार कर लोगी? वह काल का [illegible] का सामना कर सकोगी? उठती हुई लहरों को झेल सकोगी? देवसेना का उद्देश्य है कि - जब हृदय में रुदन का स्वर उठता है तभी संगीत की वीणा मिलती है। देवसेना अपनी सखी से हृदय के भार-वेग को इस प्रकार कहती है - कि कूलों में उफानकर बहने वाली नदी, तुमुल तरंगप्रभंजपवन और भयानक वर्षा। परंतु उसमें भी नाव चलानी होगी।

इस नौकागीत के द्वारा उसे नवीन शक्ति मिलती है। मायी जीवन की सरिता में जब सामने तूफान चुनौती दे रहा है उस समय की नौका की तरह देवसेना की स्थिति का वर्णन है।

बजा दो वेणु मन मोहन बजा दो।

....

इसे आनंदमय जीवन बना दो ।

यह गीत स्कंदगुप्त से गाया गया है। स्कंदगुप्त में पराजय के फलस्वरूप/ नया जोश नहीं दिखाता है। उसका देशाभिमान केवल शब्दों में ही गरजता है। अंतिम है उसकी निराशा। इस चरम सीमा में अकेलापन और निस्सहायता का अनुभव करता है। इसलिये सैनिक की कर्तव्य-पालनकहीं किया। इस तरह व्यक्ति और समष्टि का संघर्ष समाप्त हो जाता है। मानव की आंतरिक तृप्ति के साथ ही उसका भौतिक जीवन भी सुखी रहे। अंत में वास्तविक आनंद मिले रण-क्षेत्र में युद्ध करता हुआ स्कंदगुप्त राष्ट्र सेवी होते हुये भी अंत में आनंदमय जीवन का वरदान माँगता है। इस प्रकार व्यापक दृष्टि कोण रखकर प्रार्थना करता है।

यहाँ कवि भगवान के प्रति विश्वास भावना को जगाता है।

शून्य गगन में खोजता जैसे चन्द्र निराश

राका में रमणीय यह किसका मधुर प्रकाश।

....

मिला अब कौन सा नवरत्न जो पहले न था मुझ में।

यह देवसेना का गीत है। वह प्राण देकर भी प्रेम की पवित्रता की रक्षा

करती है। किसी मूल्य पर भी वह उसमें कटुता नहीं लाती। वह स्वयं कहती है कि - बारबार के गाये हुये गीतों में क्या आकर्षण है? और वह भी नहीं। केवल सुनने की नहीं परन्तु अनन्त काल तक कंठ मिला रखने की इच्छा जाग जाती है। उसके हृदय में करुणा, वेदना की एक टीस सी उठकर रह जाती है। उसकी अभिव्यक्ति उपर्युक्त गीत के माध्यम से करती है।

हृदय कुछ खोज रहा है, वह कुछ लेने को मचलता है। उसमें लहरियाँ उठती है। स्वाती की आस में मुँह खोलेसीपी की तरह जीवन प्यासा है। हृदय-समुद्र में हलचल है। इस गीत में देवसेना के जीवन-भर की असफलता और पीड़ा का करुण चित्रण है।

अगर धूम सी श्याम लहरियाँ उलझी इन अलकों से

....

निर्दयता के उन चरणों से तुम भी सुख पाओ ।"

अपने को स्कंद को अर्पित करती हुई विजया कहती है कि - "मेरी अलकों में श्यामलता, मेरी पलकों में मादकता, हृदय में बिजली, बरुनी में आँसू, अधर में प्रेम-प्याला, जीवन में व्याकुलता, और अनुनय में दीनता हो। यौवन में मादक सुख का कितना सजीव चित्रण है।

विजया वंचिता होकर भी स्कंदगुप्त पर रीझ उठती है। इस पर विलासी कल्पना का वर्णन है। विजया अपने भरा हुआ यौवन औरप्रेमी-हृदय विलास के उपकरणों के साथ प्रस्तुत करती है। नारी और पुरुष का संबंध ऐसे गीतों में स्पष्ट हो गया है। जीवन के इस सत्य को कभी कभी कवि प्रिय और प्रियतम केरहस्यमय

संकेतों में बाँधने लगता है। इसप्रकार प्रसादजी ने विजया पात्र के द्वारा नारी स्वभाव के यथार्थ स्वरूप का प्रस्तुत किया।

आह वेदना मिली विदाई
मैंने भ्रम - वश जीवन संचित
....
इसने मन की लाज गँवाई।

यह देवसेना का अंतिम गीत है। अपने जीवन पर विरक्त होकर अपनी भावी सुख की कल्पना , आशा, और आकांक्षा सबसे विदा ले ती है। इस प्रकार एक पात्र के द्वारा कवि का व्यक्तित्व झलकता है। प्रसाद का स्वतंत्र अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है। प्रसादजी का मतलब है कि - संगीत व्यक्ति-चिंतन धारा है।

उपर्युक्त गीत देवसेना की विशेष मनोदशा का ही कल्पना खण्ड है। निराशा-जनित जीवन की करुण यात्रा का मार्मिक वर्णन है जो कवि की विशेष मनोवृत्ति का परिचायक है।

<u>निष्कर्ष</u>:- इस प्रकार कवि मानवीय मूल्यों को गहराई से पकड लेते हैं। प्रसादजी ने इस नाटक में जीवन की अनेक अनुभू तियों का निर्देश किया।

इस नाटक में पात्रों के द्वारा जो गीत गाये गये हैं।, वे यत्र-तत्र अनुचित होने पर भी कहीं कहीं अत्यंत उपयुक्त बन गये। पहले पहल ही नर्तकियों का गान है अनुचित ही है। परंतु वे राजा के मनोरंजन के लिये शृंगारी गीत गाती हैं।

प्रसाद जी ने मातृगुप्त तथा देवसेना पात्रों के द्वारा अपनी भावुकता का प्रकाशन किया। इनके द्वारा कवि ने अपना आत्म प्रकाशन किया।

चंद्रगुप्त:-

चंद्रगुप्त नाटक के लिखने में प्रसाद ने एक नवीन दृष्टि को अपनाया। इसमें लंबे इतिहास को बांधने का प्रयास किया। इसमें स्कंदगुप्त की भाँति भावुक पात्र नहीं मिलते हैं। परंतु गीतों का प्रयोग कथानक के विकास और समयानुकूलता के अनुसार किया गया है।

इस नाटक में तेरह गीत हैं। मुख्यतः सुवासिनी, अलका, और मालविका ने गीत गाये हैं। सारे नाटक में मिलाकर सुवासिनी -३ अलका-३, मालविका -३, नेपथ्य -१, राक्षस-१, कार्नेलिया -१ और कल्याणी -१ गीत हैं।

सुवासिनी:-

तुम कनक किरन के अन्तराल में
लुक-छिपकर चलते हो क्यों?

....

१. जब सांध्य मलय से आकुलित
दुकूल कलित हो यों छिपते हो क्यों?

\+ + + +

२. आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा

....

कहती कंपित अधर से, बहकाने की बात
कौन मधु - मदिरा घोल रहा?

\+ + + +

सखे वह प्रेम मयी रजनी
आँखों में स्वप्न बनी ।
....
स्मृतियों की मड बनी
सखे । वह प्रेम मयी रजनी।"

ये तीनों सुवासिनी से गाये गये हैं। यह सुवासिनी सुंदरियों की रानी है। वह नाट्य के समय सुंदर आलाप एक कोमल मूर्छना की इच्छा प्रकट करती है। यह एक सुंदर गायिका है। जिसका गान सुनने के लिये जनता लालायित होती थी।

प्रथम गीत मगध साम्राट के विलास कानन में गाती है। यह सुवासिनी की एक विशेष मनोदशा का की कल्पना स्पष्ट होता है। इस गीत में जीवन, परिस्थिति और प्रेम का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यौवन के घन से रस-कण बरस रहे हैं। और लाज से भरा सौंदर्य मौन है। ओठों पर मुस्कान है, आँखों में यौवन का नशा है। मौन रहने में क्या रेसा यौवन छुक-छिप कर रह सकता है?

दूसरा गीत सुवासिनी नन्द की प्रेरणा से उनकी शाला में गाती है। यह भी एक तरह की प्रेरणा गीत होने के कारण इस में स्वाभाविकता उतनी नहीं दीख पड़ती जितनी पहले गीत में हो। सुवासिनी अपने मादक यौवन और आंतरिक कोलाहल की अभि०व्यंजना करती हुई कहती है कि यौवन में कामनायें खिल रही है। हृदय अब लाज की सीमा में न रह सकेगा। रात छवि से मतवाली हो रही है, चाँदनी खिली पड़ती है। और कहती चम्पिल अधर से बहकाने की बात"। वासना का बाँध टूट रहा है।

तीसरे गीत में पूर्णतया प्रेम ही भरा गया है। जब सुवासिनी बंदिनी बन कार्नेलिया के पास लायी गयी है, वह उसकी सखी बन जाती है। रात्री का वातावरण उपस्थित करते हुये सुवासिनी अपने अतीत प्रेम का सुखमय और मदिरा विलास का स्मरण करती है। उसे वे रातें याद आ रही हैं, जब कि उसके हृदय में मधुर झंकार होती थी और उसने रूप का आनंद लूटा था। यही गीत सुवासिनी का एवं नाटक का अंतिम गीत है।

इस प्रकार प्रसाद जी के गी नर्तकियों के गीतों के अंतर्गत उपयुक्त बन गये हैं।

<u>अलका:-</u>

१. "प्रथम यौवन-मदिरा से मत्त प्रेम करने की थी परवाह,

—— —— —— ——

और दुर्बल होगयी पहचान, रूप रत्नाकर भव उथाह।

: : : : : :

२. बिखरी किरण अलक व्याकुल हो, विरस वेदन पर चिंताबिद्ध

... ...

रूप-निशा की ऊषा में फिर कौन सुनेगा तेरा गान ॥

::: ::: ::: ::: :::

३. हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबद्ध शुद्ध भारती

... .

प्रवीर हो जयी गीत बढ़... बढ़े चलो, बढ़े चलो।

उपर्युक्त तीनों गीत अलका से गाये गये हैं। वह एक देश-प्रेमी है। इस गान

में देशभक्ति व्यक्त है।

प्रथम गीत दूसरे अंक के पाँचवें दृश्य का है। इसमें अलका ने सिंहरण के प्रति अपने प्रेम की पूर्वस्मृति और भविष्य में विश्वास प्रकट किया है। यौवन के प्रभात में प्रेम से मैं ने मत्त होकर तुम्हें बिना पहचाने अपना अमोल हृदय बेच डाला। अपना पन खोकर मैंने तुम्हें चाहा। उसके बदले में तुमसे वेदना मिली। हे बेपरवाह! तुम्हारे आने के लिये मैं ने हृत्पथ की धूल को आँसुओं का छिड़काव करके बिठा दिया है। इस गीत के द्वारा उसकी विशेष मानसिक स्थिति का भावावेश में हृदय के उद्गार व्यक्त करते हैं।

दूसरा गीत द्वितीय अंक के सातवें दृश्य में है। अलका एक और राष्ट्रीय सेविका होनेपर भी सिंहरण को प्रेम करती है। कहती है - प्रिय नहीं आ रहे, आँखें प्यासी हैं। कुछ प्रणय-अवधि शेष है। इसी से आशा बनी है। परंतु यदि प्रकृति इस समय मेरे स्वर में स्वर नहीं मिला सकती तो मेरे गान को स्पनिशा की उषा में फिर कौन सुनेगा।

इस प्रकार नाटककार ने अलका के जीवन के व्यग्र अंश , उसकी संघर्षमय स्थिति को प्रकट किया है। यहाँ केवल उसकी संघर्षमय स्थिति को प्रकट किया। अलका की अंतवृत्तियों को प्रकाशन के लिये गीत का प्रयोग किया। वह स्वयं गाकर पुरुष की मादकता की [illegible] का कहती है जिसमें यौवन की मादकता और प्रणय की तरलता है।

तीसरा गीत चतुर्थ अंक के/ षष्ठ दृश्य में है। वह समवेत स्वर में गाती है।

अलका राजक्रांति का प्रतीक है। वह समवेत स्वर में गीती है। जनमीक के हृदय में सोती हुई राष्ट्रीयता की भावना को जागृत और उत्तेजित करने का संकेत है। नवयुग की जागरुक चेतना भरने के लिये अलका का यह उद्बोधन गीत कितना ही उपयुक्त है।

यह गीत प्रयाण का सर्वोत्कृष्ट राष्ट्र गीत है। सैनिकों के लिये एक सुंदर प्रयाण गीत है के रूप में इसकी रचना हुई। यह वीरता तथा उत्साह से पूर्ण है।

मालविका:-

मधुप कब एक कली का है।

पाया जिसमें प्रेमरस, सौरभ और सुहाग

....

अलि को केवल चाहिये, सुखमय क्रीडा कुंज

मधुप कब एक कली का है।

: : : : : : : : : : :

२. बज रही बंशी आठों याम की

....

रूप सुधा के दो दृग प्यालों ने ही मति बेकाम की

:: :: :: :: :: :: :: ::

३. ओ मेरी जीवन की स्मृति ! ओ अंतर के आतुर अनुराग

....

बढ को मत क्या न है बता दो क्षितिज तुम्हारी नव सीमा।

ये तीन गीत मालविका के एक ही अंक में और एक ही दृश्य में गाये गये हैं।

प्रथम गीत में मालविका ने चन्द्रगुप्त के प्रेमी जीवन का बाह्य रूप स्पष्ट किया है। मधुप कली-कली का रस लेता फिरता है। एक का नहीं है। कुटीरों में पड़ा कुसुम रंगरलियाँ चाहता है पर मधुप कभी मल्लिका, सरोजिनी और कभी यूथी के कुंज में क्रीडा करता फिरता है। इस प्रकार चंद्रगुप्त का मन मधुप है।

दूसरा गीत मालविका ने अपने मोहन के प्रति अपना प्रेमोन्माद चित्रित किया है। यह वंशी काम की वंशी है। उनकी रूप-सुधा दृग-प्यालों में भरी है। उसीकी बोली कानों में गूँजती है।

तीसरे गीत में मरणासन्न मालविका के सामने उसके अतीत के चलचित्र आने लगते हैं। सुनहली स्मृतियों के क्रोड में सोया हुआ जीवन जाग उठा है। सामने मृत्यु मुँह बाये है। पर मालविका को संतोष है कि अपनेप्रिय के लिये अपने को मिटा रही है।

इन भावों से मालविका के जीवन-बलिदान का महत्व बढ़ गया है, जो रहस्य-मय गीत बन गया है। इस प्रकार मालविका कर्तव्य तथा प्रणय के अंतर्द्वंद्व में पड़ गयी है।

राक्षस:-

निकल मत बाहर दुर्बल आह।

लगेगा तुझे हँसी की शीत

...

हृदय पर मत कर अत्याचार।

यह गीत प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में राक्षस से गाया गया है। सुवासिनी

की आंतरिक विकलता को शान्त करने और प्रेम-संकेत का प्रत्युत्तर देने के लिये राक्षस द्वारा अभिनय सहित गाया हुआ गीत है।

इस गीत के द्वारा हमें यह सूचित है कि – प्रसादजी ने नाटकों के गीतों में अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन / पात्रों के माध्यम से किया और पात्रों की भाषा में कभी कभी ~~करके से करके~~ प्रणय गीतों में कवि स्वयम् बोलता है। यह नंद की आज्ञा से गाये जाने के कारण यह नर्तकियों के गीतों के अंतर्गत आती है।

कल्याणी:-

> सुधा सीकर से नहला दो
>
> ....
>
> व्याकुल आँसू हैं जो बिखरे
>
> ये मोती बन जायें मृदुल कहके हो सहला दो।

यह एकांत गीत है। चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व से आकर्षित होती है। परंतु अंत में विदा लेनी पड़ती है। अपनी अंतिम घड़ियों में आकाश के चंद्र को देखकर कल्याणी अपने चंद्र की छाया चाहती है। वह उन्मत्त सी गाने लगती है। इस प्रकार वह अपनी भावुकता में निर्भीर हो उठती है।

कार्नेलिया:-

> अरुण यह मधुमय देश हमारा,
>
> जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
>
> ....
>
> मदिर ऊँघते रहते जब ... घुकर रजनी भर तारा।

यह एकांत गीत है। इसमें कार्नेलिया सिंधु तट की रमणीयता का वर्णन करती है। वह केवल भारत के प्रकृति वैभव का ही चित्रण करती है। परंतु संगीत प्रेमी होने से संगीत का भली भाँति स्मरण करना ही चाहती है।

कार्नेलिया ने वर्णन किया - यहाँ का विस्तीर्ण-भूखण्ड प्राकृतिक सौंदर्य और देश का सुखमय जीवन कितना आकर्षक है। यहाँ के खग, मृग, घन, वन, पर्वत, तथा अन्यत्र सब मनोहर है। इस प्रकार प्रसाद ने देशकाल की मर्यादा का पालन किया।

नेपथ्य गान:-

कैसी कड़ी रूप की ज्वाला?

....

लोह शृंखला से न कड़ी क्या यह ।फूलों की माला?

यह एक ही सारे नाटक में नेपथ्य गीत है। यह गीत अमात्य राक्षस को सचेत करने के लिये नेपथ्य से गाया गया है। इसके अंतर्गत रूप की ज्वला में मन-पतंग के जलने, हाला के रागमयी होने और मृदुता के पीछे कठोरता रहने का संकेत है। यही राक्षस के मन की शंका की पुष्टि कर देता है।

इस प्रकार प्रसाद जी ने गीतों को इस नाटक में अपनाने में सफलता पायी।

अजातशत्रु:-

यह अजातशत्रु नामक नाटक बड़ा और ऐतिहासिक है। इसमें सब मिलकर १४ गीत हैं। इन सभी गीतों में पात्रों के व्यक्तित्व की छाया निहित है।श्री जय शंकर प्रसादजी ने पात्रों के द्वारा गीतियों का विश्लेषण किया । जैसे-

न धरो कहकर इसको अपना
यह दो दिन का है सपना

इस प्रकार नाटक के आरंभ में ही भिक्षुक गाते हुये प्रवेश करते हैं। भिक्षुकों ने इस गीत में संकेत किया है कि - सांसारिक संपत्ति सदा नहीं रहती। यह तो बरसाती नाला है, अभी भरा अभी खाली हो गया। धन का तो यही लाभ है कि - दान दिया जाय और दीन-दुखियों की सहायता की जाये। यही भगवान् की अर्चना है। इस गीत में बिंबसार की तृष्णा पर व्यंग्य भी हो गया है।

प्यारे निर्मोही होकर मत हमको भूलना रे,
....
अरे कंटीले फूल इसीमें फूलना रे।

यह चार पंक्तियों का छोटा-सा गीत है जिसे नर्तकियाँ उदयन के सामने गाती हैं -- प्रिय निर्मम होकर हमें भुला न देना। अपनी दया से हमारे हृदय को हरा-भरा बनाये रखना। प्रेम का कँटीला फूल उस हृदय में फूलने देना। ~~व्यक्त हुई~~ इस गीत में एक बहाने से मागंधी की मनोकामना व्यक्त हुई है जो लगभग प्रणय-गीत के अंतर्गत आता है।

गौतम पात्र के गीत द्वारा प्रसादजी का व्यक्तित्व व्यक्त होता है। प्रसाद के गीतों में हृदय-पक्ष की प्रबलता रही है। उनके बिना अपने गीतों में दार्शनिक तथ्यों का भी समावेश किया गया है। जहाँ कहीं चिंतन भावधारा में मिल जाता है, वहाँ संगीत बोझिल होने लगता है। कवि सत्य के निरूपण में सफल होता

परंतु गीतों का नैसर्गिक प्रवाह मंथर हो जाता है। - जैसे गौतम का गीत :-

चंचल चंद्र, सूर्य है चंचल,
चंचल जैसे पारा है।

इस प्रकार गौतम बुद्ध द्वारा गाये गये इस गीत का विषय सृष्टि की अस्थिरता है। इसका कारण यही है कि - कालरिज और वार्ड्सवर्थ जो अंग्रेजी के प्रसिद्ध गीतकार हैं, उनमें भी दार्शनिकता होने के कारण इस प्रकार के उपदेशात्मक करुणा भरित संगीत तथा गीत मिल जाते हैं।

एक और मागंधी विचार करती है कि - महाराज ने अवहेलना क्यों की? इस समय वह उदयन को रिझाने के लिये गाती है।

आओ हिये प्राण प्यारे,
नैन भये निर्मोही, नहीं अब देखे बिना रहते हैं।

इसमें पदविन्यास की शिथिलता होते हुये भी इसमें भाव प्रवणता और प्रसादत्व अधिक है। इसमें मागंधी की आत्मा भी बोल उठती है। कि वह गान प्रिय नारी है।

पद्मावती एक संगीतज्ञ के रूप में आती है। उसके गीत में संगीत के सप्त स्वर गूंज उठे हैं। पद्मावती खिन्नावस्था में वीणा बजाना चाहती है, पर उँगलियां नहीं चलतीं। तो वह कहती है कि अच्छा ही हुआ कि - आंतरिक वेदना प्रकट नहीं हुई क्योंकि मेरे साथ किसी की सहानुभूति तो है नहीं। इस प्रकार उनके गीत में असमर्थता वेदना, और निराशा का अत्यंत सुंदर वर्णन हुआ है जो नाटक का उत्कृष्ट गीत है।

बहुत छिपाया उफन पड़ा अब,

सम्हालने का समय नहीं है ,

....

भला कहो यह विजय नहीं है।

शैलेंद्र के प्रति श्यामा अपने प्रेम का उद्घाटन इस सुंदर पंक्तियों में निहित है। इस प्रकार प्रणयी को ही संबोधित करके ये गाये गये हैं।

इस नाटक के अंत में अर्थात् तीसरे अंक के सातवें दृश्य में मागंधी जो गीत गाती है वह निराशा भरित गीत है उसका मिथ्या गर्व समाप्त हो जाता है। वह सजग हो उठती है। जैसे

स्वजन दीखता न विश्व में, न बात मन में समाय कोई

....

पवन पकड़कर पता बताने न ~~कस्त-मन~~ लौट आया न जाय कोई।

जिस गीत में मागंधी का पश्चात्ताप है। जैसे - आज विश्व में मेरा कोई नहीं। पड़ी अकेली विकल रो उठी, न दुःख में कोई सहायक, प्यार के मतवाले दिन बीत गये न जवानी रही न वे रंगीनियाँ । रूप का झूठा गर्व हृदय को सालने लगा। जीवन में कंटीले पेड़ लगायेंगे।

इन उपर्युक्त गीतों के बिना अंत में नर्तकियों का गीत भी होता है, इस प्रकार इस पूरे नाटक के गीतों में प्रधान तत्व आत्माभिव्यंजना का समावेश है।

जैसे -

वह वसंत बाला अलंक से किस घातक सौरभ में मस्त

तू अब "आह" बनी घूमेगी उनके अवशेषों के पास ।

यह बिंबसार की स्थिति पर प्रकाश डालनेवाला नेपथ्य गान है। जिसमें बसंत की संध्या का सुंदर दृश्य उपस्थित है।

इस प्रकार प्रसादजी की विषय की प्रधानता की दृष्टि से इस नाटक के गीत तीन वर्गों में रखा गया है। जैसे -

१. दार्शनिक विवेचना प्रधान गीत, जिसमें सांसारिक सुखों की क्षणिकता, दृश्य जगत की नश्वरता आदि के संबंध में संकेत किये गये हैं।

२. प्रेम-वेदना सौंदर्यासक्ति आदि मनोभावों और अनुभूतियों की व्याख्या करनेवाला गीत और

३. ईश-प्रार्थना अथवा जीवन के यथार्थ रूप को व्यक्त करनेवाले गीत जो किसी विशेष मानसिक स्थिति में गाये जाते हैं। और प्रभावशाली हैं।

ध्रुवस्वामिनी :-

यह प्रसाद जी का अंतिम नाटक है। नाट्य कला की दृष्टि से यह नाटककार की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें पाश्चात्य चरित्र-चित्रण और भारतीय ~~नाटक~~ साहित्य की रस-योजना का सुंदर समवाय है। कवि प्रसादजी ने गीतों को अत्यंत स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया। जैसे

मन्दाकिनी

यह कसक अरे आँसू सहजा

बनकर विनम्र अभिमान मुझे

....

शीतलता फैलता बह जा

:::: :::: ::::

पैरों के नीचे जलधर हो, बिजली से उनका खेल चले

संकीर्ण कगारों के नीचे, शत शत झरने बेमेल चले।

....

विश्राम शांति को शाप दिये, ऊपर ऊँचे सब झेल चले।

उपर्युक्त दोनों गीत मन्दाकिनी एक ही अंक में गाये गये हैं प्रथम गीत नाटक का पहला गीत है। जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि वह राष्ट्रोत्थान के लिये चिन्तित है जो कर्तव्य करने के लिये हृदय को कठोर बना लेती है। प्रेम और करुणा से बहाया गया आँसू दुखित वसुधा पर शीतलता कासंचार करता है। जिस गीत के द्वारा संसार के प्रति अपने हृदय में निहित उदार भावना प्रकट करती है।

दूसरे गीत के द्वारा यह बोध हो जाता है कि वह अपने प्रेम को किसी के बंधनों में नहीं बाँध देती है। प्रथम गीत में उसका संतप्त वसुंधरापर शीतलता बिखेरती चलना व्यक्त है। इसी को दृढ करती है इस दूसरे गीत मे। सामन्त कुमारों के आगे गंभीर स्वर से गाते हुये प्रवेश करती है। गीत का अर्थ है - चाहे कितना बीहड रास्ता क्यों नहो, गिरिपथ का अथक पथिक सब कुछ झेलता हुआ सब ऊँचे बढता चलता है। प्रताडित होता हुआ, बाधाओं को ठुकराता हुआ, कष्टों पर मुस्कुराता हुआ आगे बढ जाता है। वह विचलित नहीं होता। वह अपने साहस पर निर्भर रहता है। विश्राम और शान्ति की परवा न करके आगे बढता है। इस

गीत में जीवन के प्रति एक महान आस्था और विश्वास निहित है। जिसमें शक्ति और साहस गूँज रहा है।

इसमें कवि की प्रगतिशील विचारधारा का समस्त जीवन दर्शन अपने अनुभव पर आधारित है। इस प्रकार कवि सुख-दुःख और आशा-निराशा को समान ही मानता है और अंतर-बाह्य इन दोनों का संघर्ष का संकेत है। प्रसादजी अंतिम पंक्ति में कहता है कि - मानव साहस को बटोरकर बाधाओं को हेरे, साथ ही अपनी ज्वाला को भी पीता रहे।

कोमा:-

यौवन तेरी चंचल छाया,

इसमें बैठ घूँट भर पी हूँ जो रस तू है लाया।

... .

पर भर रुकनेवाला । कह तू पथिक। कहाँ से आया?

यह गीत द्वितीय अंक में कोमा से गाया गया है जो एकांत गीत है। कोमायौवन की चंचल छाया पर भी मुग्ध है। इसलिये उस गीत को गाती है। उस गीत के द्वारा और भी यह व्यक्त होती है कि यौवन, जब जब आता है तो अपने साथ प्रेम-रस भी लाता हु। जीवन लहराने लगता है। अंतिम पंक्ति के द्वारा उसकी चंचलता सूचित है

<u>नर्तकियाँ:-</u>

अस्ताचल पर युवती संध्या की खुली अलक घुंघराली है।

लोमानिक माधवी की धारा अब बहने लगी निराली है।

वसुधा मदमाती हुई उधर आकाश लगा।
सब झूम रहे अपने सुख में तूने क्यों बाधा डाली है।?

यह गीत इस नाटक का अंतिम गीत है जो नर्तकियाँ गाती हैं। शकराजा के सामने वे नाचती हुई गाने लगती हैं। इस गीत में संध्या की कल्पना युवती की प्रकृति की गयी है। घुंघराली अलकों के खुलते ही अन्धकार छा गया है। प्रकृति मिलन में विभोर है। महाट ने तारों की रत्नमयी प्याली भर दी। वसुधा मदमाती हुई आकाश की ओर झुकने लगी।

कवि ने अंतिम पंक्ति में रहस्यमय प्रश्न को छिपा रखता है। यह कवि की जिज्ञासा संबंधित है। इस प्रश्न ~~वह~~ में अज्ञात की रहस्योन्मुख प्रवृत्तियाँ कुछ कुछ व्यक्त होती हैं इस तरह इस नाटक के चार गीत शृंगार परक हैं।

__जनमेजय का नागयज्ञ:-__

यह प्रसाद जी का एकमात्र पौराणिक नाटक है। नाटक पौराणिक कथा से निर्मित है। उसमें कुल सात ही गीत हैं। इनमें भी दो या तीन ही प्रशस्त एवं प्रशंसनीय हैं। गीतों का विश्लेषण इस प्रकार है। -

__सखियाँ:-__ मधुर माधव ऋतु की रजनी रसीली कोकिल की तान।
सखी कर साजन को सजनी, छबीली छोड़ सखी का मान।

....

हृदय खोल दे मुखमंडल सुख पुंज, खोल देवे विपंची वृन्द

२.　　क्या सुना नहीं कुछ , अभी पड़े सोते हो,
　　क्यों निज स्वतंत्रता को लखबा खोते हो।
　　.... ....
　　अपने स्वतत्वों से स्वयं हाथ धोते हो,
　　क्यों निज स्वतंत्रता की लखुआ खोते हो?

पहला गीत दूसरे अंक के चौथे दृश्य में है। जब जनमेजय अपनी पुत्री वपुष्टमा से बात करते तब उनके बीच अश्वमेध के बारे में भी बात आयी। वहाँ वपुष्टमा रोष भरित होती है। उस समय उनके शांति कराने के लिये जनमेजय उसका अनुनय विनय करता है। इसी बीच में रत्नवाली और प्रबका प्रवेश करके नृत्य और गान करते हैं।

अनुराग भरित प्रकृति का वर्णन ऋतुराज कोकिल तान, प्रेम् कोमल किसलय सरोज आदि से करते हुये इस गीत की आयोजना की गयी है। यह गीत करुणा का प्रकाशन करता है।

~~अनुराग भरित प्रकृति का वर्णन ऋतुराज~~ दूसरा गीत प्रसादजी का प्रभाव को स्थापित करता है। नाग-सैनिकों को उत्तेजित करने के लिये मनसा और उसकी सखियों को गान है। यह तीसरे अंक के तीसरे ~~दृश्य~~ दृश्य का पहला गीत है। इस गीत के द्वारा वे उस समय तक जनता और युद्ध सैनिकों में सोते हुये उत्साह को उद्दीप्त करने का संदेश देते हैं। और गीतार्थ यह है कि तुम्हारी स्वतंत्रता खतरे में है, शत्रु चढ़ आया है, तुम में आवेश नहीं, प्रतिहिंसा नहीं, जातीय मान नहीं,। सचमुच तुम पुरुष नहीं।

नारी हो, कुल ललनाओं की लाज बचा लो। नहीं तो अयश होगा। इस प्रकार स्वतंत्रता के लिये जितना त्याग करने का आवश्यक है उतना करने के लिये वे प्रोत्साहन देते हैं। यह मानव को नवीन चेतना को प्रदान करता है। इस गीत के द्वारा प्रसाद जी के हृदय में निहित देशभक्ति का स्वरूप दीख पड़ता है।

नेपथ्य गीत:-

१. जीने का अधिकार तुझे क्या, क्यों इसमें सुख पाता है।
मानव तूने कुछ सोचा है, क्यों आता, क्यों जाता है।

. . . .

जो कुछ आवे , करता चल तू कहीं न आता जाता है।

:: :: :: ::

२. आकर्षण का प्रेम नाम से, सब में सरल प्रचार किया

:: :: :: :: : .

" तू मैं ही हूँ।" इनस चेतन का प्रणव मधुप गुंजार किया

... ...

यह नेपथ्य गान जनमेजय को सचेत करने के लिये अपनाया गया है। इस गीत का अर्थ है - मानव, तूने कुछ सोचा है, क्यों आता क्यों जाता है? यह संसार कर्म क्षेत्र है, जिसको तुच्छ समझते हुये हो वही दुःख है। और जिस कर्म को तू दुःखकर समझते हो वह दुःख नहीं है। इस प्रकार मानव की दशायें, क्षण क्षण की नवीनता और अस्थिरता तथा स्वामी की स्थिर और निर्मल हृदय का वर्णन भी चित्रवत्सा खींचा गया है।

दूसरा गीत इस नाटक का अंतिम गीत है आर्यभूमि और आर्य जाति के

के लियेवहाँ की जनता के हृदय में अभिमान होने से राजा जनमेजय की विजय मानते हैं। जिस गीत में यह भाव निहित है कि - उस प्रेम की जय हो। जिसका सब में प्रचार प्रसार है जो प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है, जो प्रेमानंद जगत् का आधार है, जो हमारे अन्तस में छिपकर अहमिति का अनुभव कराकर अद्वैत-भावना भरता है। इस प्रकार यह गीत दार्शनिक भावनाओं से परिपुष्ट है। यहाँ व्यास के द्वारा प्रसादजी ने विश्वात्मा का वन्दन कराता है, जिसने अपने विराट रूप का विस्तार किया और प्रेम नाम से सब में आकर्षण का प्रचार किया है। उस भगवान को सब लोग जब मानते हैं। वह भगवान अपनी लीला से जल, थल, नभ का कुहुक बन गया है। यह गीत इस प्रकार दार्शनिक तत्व का निरूपण करता है।

दामिनी:- अनिल भी रहा लगाये घात

....

बरजोरी रस छीन ले गया।, करके मीठी बात।

यह इस ~~xxxxxxxxx~~ नाटक का सर्व प्रथम गीत है। वेद की पत्नी दामिनी से गाया गया है। उत्तंक शिष्य बनकर जब विद्या सीखता है, एक दिन गुरु की पत्नी दामिनी फूल-माला बनती उसका आना देखकर उसे वह काम अपना कर एक गीत गाती है। कलिका के बारे में कहते हुये संगीत की ओर अपने प्रेम को व्यक्त करती है।

सरमा:- बरस पड़े अश्रु जल, हमारामान प्रवासी हृदय हुआ।

....

~~xxxxxxxxxxxxxxxxxx~~

कहकर आनेवाला इधर फिर क्यों अब ऐसा सदय हुआ।

:::: ::: ::: :::

यह सरमा का गीत है। यह स्वांत गीत है। इस गीत की भावना ऐहिक बन्धन का परिहास था। फिर वह निर्दय रूठ गया। और लौटकर नहीं आया। जीवन भर का रोना रह गया। अब तो उसके और मेरे बीचमें खाई है। मिलन कैसे हो। इस प्रकार सरमा अपनी मनासिक स्थिति को अपने भावावेश में व्यक्त करती हुई अपने हृदय के उद्गारों को व्यक्त करती है। और अपने हृदय की सारी वेदना को व्यक्त करती है।

इस प्रकार प्रसाद ने चरित्र-चित्रण के साथ ही और कथानक का भी गहतों में योग दिया। केवल राज सभा की शोभा और राजा का मनोरंजन के लिये ही गीतों का समावेश प्रसाद ने अधिक नहीं किया। इस प्रकार गीतों की कला में पर्याप्त सुधार हो गया है।

राज्यश्री :-

गीतों के प्रकाशन इस नाटक से ही सुविकसित रूप में हुआ है। इसमें कुल सात गीत हैं। राज्श्री - १, सुरमा - ४; नेपथ्य गान - १ और समवेत स्वर में -१ है।

सुरमा :- आशा विकल हुई है मेरी ।

....

१. गाँठ भूल जीवन धन की रे।

... ...

सम्हले कोई कैसे प्यार

२. मचल मचल उठता है चंचल

... .

कितना है सुकुमार ।

जब प्रीति नहीं मन में कुछ भी,

३. तब क्यों फिर बात बनाने लगे,

....

तुम देखने को तरसाने लगे।

४. तेरा नाम, सब सुखदाम

....

सब छाया की धूप

उपर्युक्त चारों गीत सुरमा के हैं। इनमें उसकी वेदना और करुणा का आभास है। प्रथम गीत में अपने बीते निराशामय जीवन का चित्र देवगुप्त के सामने रखा है। इस प्रकार सुरमा प्रेम की तृप्ति के लिये अधीर हो रही है। दूसरे गीत में यह अर्थ निहित है कि प्यार बड़ा चंचल है। मचल मचल जाता है। छुई-मुई की तरह झट से कुम्हला जाता है और झट से हँस पड़ता है। तीसरे गीत में सुरमा विकट घोष को गाना सुनाती है। और उपालम्भ देती है। सुरमा के अंतिम गीत में वह एक अवधूती बन जाती है और भगवान की शाश्वतता और संसार की क्षणभंगुरता का गीत गाती है। इस प्रकार सुरमा घायल और दुखिया है। वह जीवन धन की गाँठ भूल गई। इस प्रकार अपने गीतों के द्वारा घनीभूत वेदना का प्रकाशन करती है जिस पात्र के द्वारा प्रसादजी करुणा पूर्ण बनता है।

<u>नेपथ्य गान:-</u> अब भी चेत ले तू नीच

....

स्नान कर करुणा सरोवर, धुले तेरा कीच।

यह दिवाकर मित्र का चार पंक्तियों का नेपथ्य गीत है। जब राज्यश्री अपने जीवन पर विरक्ति भावना व्यक्त करती है, तो इस प्रकार निश्चय करती है कि - जीवन का अंत होना ही अच्छा हो। उस समय वह भगवान की प्रार्थना करती है। इसमें दार्शनिकता दृष्टि गोचर होती है। जिससे यह स्पष्ट है कि प्रसाद जी की दृष्टि में दार्शनिकता की ओर मुड़ गयी है।

राज्यश्री :-

जय जयति करुणा-सिं
जय दीन जन के बंधु
....
जय जय जगत्पति भूप ।

उपर्युक्त नेपथ्य गान राज्यश्री को निर्देशित करके रचना किया गया है। उसके अनंतर तृतीयांक में स्वयं राज्यश्री से यह गीत गया जाता है। वह चिता में कूदने से पहले दीनबंधु , करुणासिंधु, पतित-पावन जगत्पति भूप से प्रार्थना करती है जो अत्यंत उपयुक्त एवं स्वाभाविक हो गया है।

समवेत स्वर से :-

दुःख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सर से
....
मिटे कलह शुभ शांति प्रकट हो अचर और चर से

यह समवेत स्वर गीत है जो इस नाटक का अंतिम गीत है। इसका प्रयोजन अपने मन में निद्रित भावनाओं को जाग्रत करना ही है। राज्यश्री अपने भाई का

राजमुकुट ग्रहण करते समय गाया गया है।

<u>एक घूंट</u>

यह एक छोटा नाटक है। इसमें कवि आश्रम के स्वरुप को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। इसमें गीत बहुत कम है। सब मिलकर चार ही हैं। इनमें दो प्रेमलता, एक नेपथ्य और एक आश्रमवासियों सखियों के द्वारा गाये गये हैं।

<u>नेपथ्य में</u>:-

खोल तू अब भी आँखें खोल

यह "एक घूंट" का प्रथम नेपथ्य गीत है जो आश्रम वर्णन के बाद है। समीर की झोंके चल रही है। बसंत के फूलोंकी झीनी झीनी सुगंध कहीं दूर से गीत को मौलश्री के नीचे बैठी हुई बनलता सुनती है। जिसका अर्थ है - सौंदर्य शाश्वत आनंद का कारण हैं छवि की किरणें बिखर रही हैं। इनमें खिलो, सौंदर्य -सुधा -सीकर से सिक्त हो जाओ। सौंदर्य का जो अनंत स्वरहै उस स्वर में अपना स्वर मिला दो। सौंदर्य से ही सारा संसार जाना जाता है। फिर उसे जानने-पहचानने का अभिनय कैसा? अपने को मत भूलो, लोक-लाज का बन्धन खोल सौंदर्य का उपभोग करो। इस गीत के द्वारा संगीत अनन्त स्वर में भरी हुई प्यास से द्रवीभूत होकर एक घूंट उसके गले में डाल देने की कामना व्यक्त है। इस प्रकार प्रसाद जी का सौंदर्य प्रेम स्पष्ट होता है।

प्रेमलता :-

जीवन वन में उजियाली है

यह किरणों की कोमल धारा

सुमन खिल रहे हों

... ...

उसी स्निग्ध छाया तले ..पी...लो...न ... एक घूँट

यह "एक घूँट" में अंतिम गीत है जो वनलता द्वारा प्रेमलता और आनंद के प्रेम-मिलन का अभिनंदन है। मिलन-कुंज में जगत् का श्रम-संताप खो जाता है, उस कुंज में सुखद सरल सुमन खिलते हैं। जिस कुंज में पेड और लतिकायें गले मिलती हैं उसी की छाया तले प्रेम का एक घूँट पी लो।

इसके द्वारा यह प्रतिपादित है कि इसमें जीवन दर्शन की स्थापना हो जाती है। यहाँ पर ~~मस्तिष्क~~ मस्तिष्क और हृदय का समन्वय रखा गया है। वनलता ने संकेत पर आश्रम की स्त्रियाँ मधुर मिलन का स्थान-कुंज का यशोगान करती हैं।

इस प्रकार इसमें कवि प्रसादजी ने नाटक और गीत की भावनाओं में साम्य रखा है। ये सभी परिस्थिति तथा विषय के अनुकूल रखे गये हैं।

विशाखा:-

इस नाटिका में गीतों के अतिरिक्त पद्य का प्रयोग भी संभाषण के लिये हुआ है। विशाखा प्रसाद के आरंभिक नाटकों में एक होने के कारण देखने पर इसमें गीत-योजना निरंकुश रूप में है। इसमें कुल १७ गीत पात्रों के द्वारा गाये गये हैं।

इस नाटक के आरंभ में ही विशाखा अतीत की अभिव्यक्ति गान के द्वारा करता है कि -

करुणालय चित्त शान्त था

अरुण थी पहली नयी उषा,

किसको चंचल चित्त सौंप दूं ?

इसके बाद चन्द्रलेखा वृक्षों के नीचे विश्राम करती हुई विशाखा के साथ मिलकर दोनों गीत गाती हैं। जिसमें दार्शनिक चिन्तन निहित है। जैसे सुख कहीं नहीं मिलता। सारा जीवन दुःखमय ही है जिसमें दया नहीं दिखाई पडती।

सखी री। सुख किसको हैं कहते ?

... ...

निर्दय जगत, कठोर हृदय है और कहीं चल रहते।

चन्द्रलेखा और उसकी बहिन इरावती अपने दुःखमय जीवन और दयाहीन जगत् से ऊबकर कहीं और चल रहने की सोचती है। इस प्रकार चंद्र लेखा अपनी सखी से सुख की परिभाषा चाहती है।

इस नाटक में प्रसादजी व्यक्ति और जगत् के समन्वय का प्रयास कर रहा था। इसी स्थिति के कारण कहीं कहीं गीत भावहीन और नीरस हो जाते हैं। उसमें सरसता नहीं रह जाती है। वे केवल उपदेश की भाँति प्रतीत होने लगते हैं। जैसे -

जीवन भर आनंद मन से

खाये पीये जो पावे

... ...

संस्कृति को सर्वस्व मनाता, इसमें ही सुख पावे।

यह की महंत का गीत है। लोग दुनिया को स्वार्थी सांपिन कहते हैं, पर क्या उससे छुटकारा हो सकता है। बच्चा माँ से मार खा करके भी "माँ", माँ" पुकारता है इसी प्रकार मनुष्य संसार को सब कुछ मानता है।

इसके अध्ययन के कारण जो दार्शनिक चिन्तन प्रसाद को मिल रहा था, उसका प्रयोग आरंभ से ही उन्होंने किया। उपर्युक्त गीत में केवल मानव रोकर या गाकर ही अपना सर्वस्व मानकर सुख पाता है" इस प्रकार जीवन का अनुभव उपदेश के रूप में दिया गया है।

इसके उपरांत सुश्रवा नाग उसके बाद महापिंगल प्रलय काल का भयंकर वातावरण और प्रकृति आँधी का वर्णन करते हैं । जैसे

उठती है लहर हरी - हरी

पतवार पुरानी, पवन प्रलय का कैसा ..

इस प्रकार यदि एक ओर जग भर में मचे हुये अन्धकार और घोर भौतिकता पर विचार करता है तो साथ ही खुले हुये वसन्त और यौवन के मधुपान की ओर भी संकेत करता है - जैसे -

नर्तकियों के गीत :-

आज मधु पीले, यौवन वसन्त खिला,

शीतल निभृत प्रभात में बैठ हृदय के कुंज

... ...

आज मधु पी ले, यौवन वसन्त खिला ।

यह नरदेव के दरबार में नर्तकी का दूसरा गीत है। जिस प्रकार वसंत में कोकिल आनंद-विभोर हो कलरव करता है, रसाल मंजरित होकर खिल उठता है, सुरभित समीर बहता है तो प्रेमियों को अधीर कर देता है, मधुप मुकुल से मिलता है, उसी प्रकार हे प्रेमी, तू भी यौवन-वसंत का आनंद लेले ।

इस प्रकार आरंभ से ही जिस समन्वय का प्रयत्न प्रसादजी ने किया, वह इस नाटक में स्फुट रूप में है। एक और दार्शनिकता प्रेमानंद पात्र के द्वारा प्रस्तुत करता है - जैसे -

मान हूँ क्यों उस भगवान्

....

इस प्रकार स्वामी प्रेमानंद चैत्य में बैठे गाते हैं। भगवान वह है जिसमें करुणा, विश्व वेदना और समभाव है, जिसमें मोह नहीं द्वेष नहीं, ऐसा चाहे कोई नर हो अथवा किन्नर, उसे मैं तो भगवान ही कहूंगा। यह लौकिक प्रश्न, रहस्यमय होते लगता ! उसकी आभा एक झलक बनकर रह जाती है। इस प्रकार यत्र-तत्र प्रसादजी समाज के निकट जाते हैं। चंद्रलेखा को जगत् में निर्दय और कठोर हृदय दिखाई देता है। जब वह संघाराम में बन्दिनी हो जाती है, उस समय प्रणय कीआकुलता में गीत गाती है।

देखी नयनों ने एक झलक, वह छवि की ....

मधु पीकर मधुप रहे सोये कमलों में कुछ कुछ लाली थी।

यह चार पंक्तियों का बन्दिनी चंद्रलेखा का गीत है जिसमें उसने विशाखा के प्रेम में बंध जाने की स्मृति को जगाया है। निराली छवि की झलक को इन आँखों ने देखा, विकसित कमलों के मधु को पीकर मधुप मस्त हो गये थे, उनके यौवन की

मादकता पलकों में भर गयी और उनका रूप सौंदर्य मुझे मोहित कर गया।

इस दृश्य में सखियाँ चंद्रलेखा को घेरकर प्रणय संबंधी गान गाती है। इस प्रकार वे रानी का मनोरंजन करती हैं।

और प्रथम अंक में चौथे दृश्य में प्रेमानंद परिव्राजक होकर प्रकृति का दर्शन करना चाहता है।

> घबराना मत इस विचित्र संसार से
> ~~संसार~~ औरों को आतंक न हो अविचार से ।
> ... ...
> निर्बल भी हो सत्य कवच मत छोड़ना
> शुचिता से इस कुहक जाल को तोड़ना ।

यह आचार्य प्रेमानंद का विशाखा को उपदेश है। संसार विचित्र है। इससे घबराओ मत, किसी को आतंकित मत करो, आनंद की कोई सीमा नहीं, चालों में पड़कर अपना सत्यानाश मत करो। आनंद की कोई सीमा नहीं, सीधी राह चलो, किसी से धोखा मत करो, सत्य कवच निर्बल भी हो तो भी उसे मत छोड़ो, शुचिता से जीवन के अंधकार को दूर करो।

इस प्रकार वह स्वयं गीत गाकर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है कि - "शुचिता से इस कुहक जाल को तोड़ दो।"

तीसरे दृश्य में नर्तकी राजा नरदेव की प्रेरणा से एक प्रणय गीत का जो मादकता से पूर्ण है, राजसभा में आलापन करती है। इस प्रकार के गीतों राजाओं के लिये मनो-

रंजन के साथ ही उद्दीपन का कार्य भी करते हैं। गीत के पश्चात् उसे पुरस्कार दिलाया जाता था।

इस नाटक के अंत में इरावती और नरदेव इन दोनों से अलग अलग प्रार्थना गीत गाये गये हैं। जैसे -

इरावती :-

दीन दुखी न रहे कोई

सुखी हों सब लोग

....

भूप प्रजा समदर्शी हों ... तजकर सब ढोंग

हे करुणा सिन्धु भगवान, कोई दीन-दुःखी न रहे, सब सुखी हों, देश समृद्ध हो, जनता नीरोग हो, जगत् की कूटनीति समाप्त हो, आपस में सहयोग बढ़े, राजा और प्रजा ढोंग छोड़कर समदर्शी हों।

इस प्रकार इसमें इरावती उस परिस्थिति की दीन दशा को देखकर जहाँ केवल क्रूरता, प्रतिहिंसा का आतंक रह गया, उस दुःख पूर्ण संसार को बनाये भगवान देव से प्रार्थना करती है।

साधु भी आनंद रूप को खोजता फिरता है। इस प्रकार कवि एक व्यापक और बहुमुखी आधार अपनाने लगता है। इस प्रकार प्रसाद भी संभवतः प्रभावित हो गये थे। साधु अपने उपदेश गीतों के द्वारा प्रतिपादित करते हैं।

इस प्रकार कई तरह की भावनाओं का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार प्रणय, उपदेश प्रार्थना आदि तरह तरह के गीतों का समावेश विशाखा, चंद्रलेखा, सखियाँ,

नर्तकी, साधु, मदेव, एरावती आदि इन्हीं पात्रों के माध्यम से स्वाभाविक रूप में प्रसादजी ने प्रवेश किया।

निष्कर्ष:- उपर्युक्त सभी नाटकों के गीतों के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि - प्रसाद के गीतों में विद्रोही नहीं है, परंतु चिन्तन शीलता का संकेत भी है। अधिक से अधिक प्रकाश की ओर बढ़ जाने का प्रयत्न कर रहा है। और प्रेम का आदर्श भी कुछ नाटकों में स्थापित किया गया है।

इस प्रकार उनके गीतों में विलास, प्रणय, करुणा एवं दार्शनिकता तथा स्वाभाविकता का पुट दिखाई देता है।

इस तरह प्रसादजी अपने सभी नाटकों में गीतों को अपनाने में सफल हुये हैं।

: : : : : : : : : : : :

-: गीतों की तालिका :-

स्कंदगुप्त

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
प्रथम	प्रथम	नहीं	—	—
"	द्वितीय	है	नर्तकियाँ	नर्तकियों का गीत
"	तृतीय	है	मातृगुप्त	एकांत गीत
"	षष्ठ	है	मुद्गल व मातृगुप्त	भगवान से विनती
"	"	"	स्त्री और पुरुष	—
"	"	"	मातृगुप्त	—
"	सप्तम	"	देवसेना	एकांत गीत
द्वितीय	प्रथम	"	"	" "
"	चौथा	"	नेपथ्य गान	दार्शनिक गीत
तृतीय	प्रथम	"	विजया	एकांत गीत
"	द्वितीय	"	नेपथ्य गान	नेपथ्य गीत
"	चौथा	"	देवसेना की सखी	प्रेम का गीत
चतुर्थ	द्वितीय	"	नर्तकी	नर्तकियों का गीत
"	सप्तम	"	करुणा सहचर	—
पंचम	द्वितीय	"	देवसेना	एकांत गीत
"	"	"	"	"
"	तृतीय	"	"	"
"	षष्ठ	"	"	प्रेम गीत

चंद्रगुप्त

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
प्रथम	दूसरा	है	सुवासिनी	मनोदशा का कल्पना-खण्ड
"	"	"	राक्षस	नर्तकियों के गीत
द्वितीय	प्रथम	"	कार्नेलिया	एकांत गीत
"	पाँचवाँ	"	अलका	प्रणय गीत
"	सातवाँ	"	"	" "
तृतीय	पाँचवाँ	"	सुवासिनी	प्रेम गीत
चतुर्थ	प्रथम	"	कल्याणी	एकांत गीत
"	दूसरा	"	नेपथ्य गान	नेपथ्य गीत
"	चतुर्थ	"	मालविका	प्रेम गीत
"	षष्ठ	"	अलका	समवेत स्वर गीत
"	नवम	"	सुवासिनी	प्रेम गीत

<u>अजात शत्रु</u>

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
प्रथम	चौथा	है	भिक्षुक	संसार की तृष्णातुरता
"	पंचम	"	नर्तकियाँ	प्रेम गीत
"	"	"	मागंधी	प्रणय गीत
"	छटा	"	गौतम	मानव की अस्थिरता संबंधी गीत
"	नवम	"	पद्मावती	मन की मार्मिकता संबंधी गीत
द्वितीय	द्वितीय	"	श्यामा	प्रणय गीत

* * * * -

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
द्वितीय	छटा	है	वासवी	प्रार्थना गीत
"	सातवाँ	"	मल्लिका	" "
"	आठवाँ	"	श्यामा	प्रणय गीत
तीसरा	दूसरा	"	बाजिरा	" "
"	तीसरा	"	विरुद्धक	प्रेम गीत
"	"	"	श्यामा	स्वगत रूप गीत
"	सातवाँ	"	मागंधी	" "
"	नवम	"	नेपथ्य गान	शोक गीत

ध्रुवस्वामिनी

प्रथम	नहीं	है	मन्दाकिनी	नीरव एकांत
"	"	"	"	" "
द्वितीय	"	"	कोमा	एकांत गीत
"	"	"	नर्तकियाँ	प्रणय गीत

जनमेजय का नागयज्ञ

प्रथम	द्वितीय	है	दामिनी	——
द्वितीय	प्रथम	"	नेपथ्य में	नेपथ्य गीत
"	तृतीय	"	सखियाँ	वसंतऋतु वर्णनपरकगीत
"	पंचम	"	सरमा	विरहयुक्त एकांतगीत
तृतीय	द्वितीय	"	प्रमदा, कलिका दामिनी	करुण गीत
"	तृतीय	"	मनसा दो दासियाँ	वीर गीत

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
तृतीय	तृतीय	है	नेपथ्य गान	विजय गीत

<u>राज्यश्री</u>

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
प्रथम	तृतीय	है	सुरमा	निराशापूर्ण गीत
द्वितीय	छटा	"	"	प्रेम गीत
तृतीय	द्वितीय	"	नेपथ्य गान	दार्शनिक गीत
"	चौथा	"	सुरमा	प्रेम गीत
"	पंचम	"	राज्यश्री	प्रार्थना गीत
चतुर्थ	प्रथम	"	सुरमा	दार्शनिक गीत
"	द्वितीय	"	समवेत स्वर से	आनंद गीत

<u>एक घूँट</u>

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
नहीं	नहीं	है	नेपथ्य में	सौंदर्य प्रेम गीत
"	"	"	प्रेमलता	करुण गीत
"	"	"	"	" "
"	"	"	आश्रम की अन्य सखियाँ	अभिनंदन गीत

<u>विशाखा:"</u>

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
प्रथम	प्रथम	है	विशाखा	प्रकृति-गीत
"	"	"	चंद्रलेखा	दार्शनिक गीत
"	"	"	महन्त	" "
"	"	"	सुश्रवानाग	प्रणय गीत
"	द्वितीय	"	नर्तकीमहापिंगल	——

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
प्रथम	तृतीय	है	नर्तकी	प्रणय गीत
"	चौथा	"	साधु	———
"	"	"	प्रेमानंद	प्रकृतिवर्णन संबंधी
"	पंचम	"	चंद्रलेखा	प्रणयाकुल गीत
द्वितीय	प्रथम	"	चंद्रलेखा, विशाखा, सखियाँ	प्रेम गीत
"	द्वितीय	"	महापिंगल, तरला	" "
"	तृतीय	"	नरदेव	प्रकृति वर्णन परक गीत
"	चौथा	"	चंद्रलेखा	जीवन गीत
"	छटा	"	प्रेमनंद	प्रार्थना गीत
"	"	"	चंद्रलेखा	पति-पूजाभक्ति गीत
तृतीय	प्रथम	"	सखियाँ	नदी-मनस वर्णन
"	"	"	महारानी	तन-मन संबंधित गीत
"	पंचम	"	विशाख	———
"	द्वितीय पंचम	"	इरावती	प्रार्थना गीत
"	"	"	नरदेव	" "

कामना:-

अंक	दृश्य	गीत	गायक	गीत का विषय
प्रथम	तृतीय	१	कामना	करुण गीत
"	चौथा	"	"	"
"	छठा	"	विलास	प्रेम गीत
द्वितीय	तृतीय	"	लीला	"
"	छठा	"	लालसा	"
तृतीय	द्वितीय	"	कामना	समवेत स्वर गीत
"	चौथा	"	वन लक्ष्मी	——
"	सातवाँ	"	-	समवेत स्वर गीत

-: : : : : : : : : : : : : : : : -

अष्टम अध्याय

निष्कर्ष

-: अ ष्ट म अ ध्या य :-

नि ष्क र्ष

श्री प्रसाद जी का छायावादी युग के पुरस्कर्ताओं में विशिष्ट स्थान है। प्रसाद जी की रचनाओं में सभी पंडितों के लिये ही उपयुक्त बन गयी हैं। क्यों कि अपनी नाटकों की रचना में भाषा क्लिष्ट है जो साधारण मानव को रसास्वादन करने में असंभव हो गया। नाटकों की रचना में उनका अप्रतिम स्थान है। जैसे आजकल भी नाटक के क्षेत्र में वे कदाचित् अकेले हैं, जो उत्तम स्थान को प्राप्त कर चुके हैं। क्योंकि प्रसादजी के नाटकों की कथावस्तु अनावश्यक रूप से विस्तृत है। और अभिनेयता संदिग्ध है। वे आजकल हिन्दी नाटकों में केवल आंशिक रूप में महत्वपूर्ण दिखाई पडते हैं।

प्रसादजी ने अपने नाटकों में संगीत की गूँज की तरह करुणा भरित एवं गीतिमय दृढ प्रेयसियों की सृष्टि की है। प्रसादजी ने भारत के प्राचीन नाटकों का अनुसरण किया। इसलिये जहाँ कवि-हृदय मचलता है, वहाँ गीतों की सृष्टि करने में समर्थ हो गये हैं। राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी आदि में गीतों की सीमा है। परंतु चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त आदि में गीतों की संख्या बहुत बढ गयी है। यह नहीं, यत्र-तत्र गीत भी बहुत लंबे हैं। इस प्रकार रंगमंच के विचार को नाटककार ने छोड दिया है। इसके अतिरिक्त एक पात्र गान प्रिय होने से बहुत अधिक गीत गाता है। इसलिये प्रेक्षक या पाठक के लिये वह अप्रिय हो जाता है। प्रसाद की काव्य-प्रिय होने से ही उनके प्रायः बडे हैं। परंतु ये सभी रंगमंच की दृष्टि से अनुपयुक्त हैं।

परंतु प्रसादजी ने स्वयं कहा गया है कि - संस्कृत के उत्तररामचरित, शकुंतला, मुद्राराक्षस, आदि नाटकों के जैसे अपने नाटक भी अभिनेताओं के द्वारा अभिनीत न हो सकते और साधारण जनता में रसोद्रेक न कर सकते। इसलिये ये गीत एक मुख्य के कारण रह गये हैं। - जैसे - गीत अधिक और इतने लंबे गाने बहुत समय लेते हैं और जनता में बोरियत की चीज बन जाती है।

भरत मुनि के अनुसार नाटक तभी अभिनेय होगा जब उसमें -

मृदु ललित पदाढ्यं, गूढ शब्दार्थ हीनं,
जन पद सुख बोध्यं, युक्ति मनृत्य योज्यं,
बहुकृत रसमार्गं, सन्धि, संधानुयुक्तं,
भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।"

अर्थात् मनोरम पदावलियों वाला, सभात्मक, जीवन से संबंध रखनेवाला, नृत्य संगीत से समन्वित विविध काव्य रसों से ओतप्रोत एवं संधि युक्त जो नाटक हो वह अवश्य ही अभिनेय होगा।

परंतु प्रसादजी के नाटकों की भाषा जटिल दुर्बोध, गूढ शब्दार्थ सहित है। और विशेषतः गीतों में छायावादी तत्व आजाने से उनका अर्थ अस्पष्ट ही रहता है।

प्रसादजी के गीतों में गीतों का प्रधान तत्व आत्माभिव्यक्ति का समावेश है। यत्र तत्र पात्रों की अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से होती है। परिस्थिति और विषय के अनुकूल ही गीतों का निर्माण किया गया है। कुछ नाटकों में प्रथम गीतों का समावेश अधिक हो गया। जैसे - चंद्रगुप्त,। व्यक्तिगत और जगत के समन्वय का प्रयास प्रसादजी कर रहे थे। इसलिये कहीं कहीं गीत भावहीन, नीरस हो जाते हैं। और सरसता भी नहीं रह जाती। कुछ गीतों की रचना दार्शनिक योजना के लिये

जैसे अजातशत्रु में "गौतम" के गीत।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि प्रसाद के नाटक चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अजात शत्रु, जनमेजय का नाग यज्ञ , राज्यश्री, विशाखा, एक घूंट, कामना में गीत वैज्ञानिक भावना, प्रणय, देशभक्ति , दार्शनिक योजना, करुणा, और यत्र तत्र रहस्यवादी भावनाओं से संचालित है। ये सभी अपने प्रारंभिक नाटकों में क्षिप्त मात्र होने पर भी आगे बढकर उनकी रचनाओं में ये गीत विरचित रूप में आ गये हैं।

आज की दृष्टि से जनता में नाटकों के गीतों को सुनने का अवकाश न होने के कारण उनका प्रचार अधिक न रहा है। क्योंकि सिनेमा का प्रचार बढने से सिनेमायी गीतों की एक अलग श्रेणी बन गयी है। भावों में हलकापन, भाषा में सादगी, बाजो-गाजों पर अत्यधिक निर्भरता ।

जीवन में विचार की प्रधानता बढती जा रही है। तो गीत-संगीत मुक्त हो गये हैं। भाव मुक्त हो गये हैं, अर्थ प्रधान हो गये हैं। इसलिये आजकल उन ऐतिहासिक गीतों को गाया नहीं जाता। केवल पढे- जाते हैं। और आजकल कवि जनपदीय बोलियों में लिखने लगे हैं। इसलिये साहित्यिक गीत-कला का लाभ ग्राम गीतों को दे रहे हैं।

परिशिष्ट १

सहायक ग्रंथ-सूची